

ओढ़ो गयी इस मैली चादर से मेरा कोई अनुमान नहीं लगा सकते हो, तो लो देखो।" पद्मिनी ने अपनी मैली चादर उतारकर अलग रख दी।

हां, घनघोर श्यामघटा को छेदकर शरद का पूर्णचंद्र निकल आया। या सुर-असुरों के समुद्र-मथन से साक्षात् सागर-सुता जल के अतल गर्भ से निकलकर प्रकाश-मंडल में उभर आयी? उस बढ़ते हुए अंधकार की रजनी में सुंदरी के रूप की आभा और भी बहुगुणित होकर चमक उठी। क्या उसके विवाह के वे अलंकार और रत्न-जटित, सलमा-सितारों से काढ़े गये वस्त्र नक्षत्र-खचित आकाश की प्रतियोगिता में नहीं थे?

रामचंद्र मानो किसी मंत्र से अभिभूत पद्मिनी की ओर बढ़कर उसका हाथ पकड़ लेने को चला कि उसे अंक में भर ले। पर तड़ित्-सी ताड़ना-भरे स्वर में वह चिल्लाई, "सावधान, जहां पर हो, वहीं खड़े रहो। इस विजन वन के एकांत में मैं तुम्हारे सामने पड़ गयी हूं, तो क्या इसका यह अर्थ है कि मैं तुम्हारी उद्दामता के जाल में उद्भ्रांत हो जाऊं? वहीं रहो, वहीं खड़े रहो। अगर तुम अपनी कुवासना से विलग नहीं हो सकते तो मुझे इस निशा में तुम्हारी सहायता का कोई लालच नहीं। मुझे अकेली ही अपने मार्ग पर जाने दो।"

रामचंद्र कांपते हुए जहां का तहां ही रह गया। स्तंभित होकर बोला, "अच्छा, मैं तुम्हारी आज्ञा का अनुवर्ती हूं। अपना परिचय तो दो।"

"सुनो, मैं पछीत गांव के मुखिया की लाड़ली कन्या हूं। मेरा हाथ देखकर एक ज्योतिषी ने कहा था कि मैं महारानी बनने के लिए पैदा हुई हूं। यदि मैं ज्योतिषी के वचनों को कोई सार्थकता न भी दूं, तो क्या स्वप्नों का भी समर्थन भुला दिया जा सकता है?"

"उनका कैसा समर्थन?"

"वे जो बार-बार मुझे राजसिंहासन पर बैठाकर मेरे माथे पर राज-मुकुट रखते हैं।"

रामचंद्र अनमना होकर कुछ सोचने लगा।

पद्मिनी कहने लगी, "पर मेरे पिता कल रात एक किसान के बेटे के हाथ में मेरा हाथ देने वाले थे। तुम क्या कहते हो, मैं एक भेड़-बकरी की तरह उसके वश में बंध जाती?"

रामचंद्र ने कोई निर्णय नही दिया या दे ही नही सका।

"और जब भगवान ने मुझे अवसर दे ही दिया तो मैं क्यों खो देती उसे ? मैं विवाह की अग्नि से निकल भागी हू। रात ही रात जगल ही जगल भागती रहा और आज का पूरा दिन भी उसी दि .ा और दशा मे।"

"बिना खाये-पिये ही क्या ?"

"जब कोई उद्दाम लालसा मन मे घर किये होती है, तो भूख-प्यास क्या कोई अस्तित्व रखती है ? फिर इस वेश मे जिसके भी द्वार पर भीख मांगने जाती, वह समोह मे न पड़ जाता ? किसीको सहज ही मेरे वस्त्रा-भूषणों का लालच जाग उठता तो किसीको मेरी मांसलता का ! नही ?"

"मेरी कमर मे एक पोटली बधी है, उसमे कुछ पूरिया है। मैं बिना किसी लोभ के उन्हे तुम्हे समर्पित कर सकता हू।"

वह हंसती हुई बोली, "मैं चार हाथ-पैरो से चल रही थी न ? उसी जन्म को चरितार्थ करने के लिए मैंने कुछ पेडों की पत्तियां चबा ली है, और मैं अभी इस स्रोत से पानी पीकर आयी हू। इस कारण अब मुझे फिर सुबह तक चलते रहने का सबल प्राप्त हो गया है।"

पानी के स्रोत का पता सुनकर भी रामचद्र को घोड़े की सुधि नही जागी, उसने पूछा, "तुम कहा जा रही हो ? तुम्हारा लक्ष्य कहां है ?"

"कहा बताऊ ? मै जहा भी जा रही हूंगी, मेरा लक्ष्य ही मुझे खीचता हुआ ले जा रहा है। मैंने जब से होश सभाला है, मैं राजप्रासाद, राजसभा, राजधानी के ही सपने सजोती चली आयी हू। स्वप्न ही नही, जागृति मे भी सेनाओ की भाग-दौड, वस्त्र-शस्त्रों की मार-काट, रथचक्रो की खड़-खड़ाहट,हाथी-घोड़ों की हुंकार सुनती चली आयी हू।"

"सुदरी, यदि तुम मेरे इस कथन को अत्युक्ति न समझो, तो क्या मै भी कह सकता हू कि मेरे भीतर से भी कोई एक ऐसी ही ज्वाला बाहर निकलने के लिए छटपटाती है !"

"चुप रहो, अनर्गल प्रलाप मत करो। न जाने कब से जगलो मे पैदल ही मारे-मारे फिर रहे हो।"

अब तो रामचद्र को घोडे की स्मृति हो आयी। उसने पूछा, "... का सोता किधर है ?"

"आखेट नही पा सके, तो तुम्हें पानी भी क्या आसानी से मिल जायेगा ?"

"देवी, यदि तुम अपनेको मेरे प्राप्त किये गये आखेट में परिगणित नही करती हो तो मुझे ही अपना आखेट समझ लो।" रामचंद्र ने डरते-डरते यह वाक्य कह ही तो दिया।

पद्मिनी बड़ी जोर से हस पडी, "अच्छा तो चलोगे तुम मेरे साथ ? है तुम्हे ज्ञात, इस अधेरे वन मे कही का कोई मार्ग ?"

"मुझे तो नही है। पर मेरे पास एक घोड़ा है। वह रात के अंधकार मे भी मार्ग देख लेता है; और उसके पास कुछ ऐसी दूर की सूझ भी है, जिससे वह हमारे सुपास का पता लगा ही लेगा। हम उसपर सवार होकर निरापद स्थान तक पहुंच सकते हैं।"

"धत्।"

पद्मिनी की इस भर्त्सना पर रामचंद्र ठिठककर रह गया। और एक सास लेकर उसने पूछा, "फिर इस शून्य अधकार में दूसरा उपाय ही क्या है ?"

"और यह घोर निर्लज्जता अभी तक तुम्हारी समझ ही मे नही आयी ? तुम्हारा घोड़ा चाहे कितना ही बलिष्ठ क्यो न हो, हम दोनों कैसे उसपर एक साथ हीं···"

पद्मिनी आगे कहती-कहती रुक गयी, और रामचंद्र की समझ में वह निराशा आ गयी। उसने असहाय होकर कहा, "तुम थकी हुई हो। उसपर सवार होकर जाओगी तुम। मैं पैदल ही तुम्हारा अनुगमन करूंगा।"

पद्मिनी उसकी दयनीयता पर द्रवित होकर बोली, "यह भी तो अत्याचार ही होगा। वस्तु तुम्हारी और बिना किसी कारण के ही उसकी अधिकारिणी मैं ?" एक क्षण की यति देकर उसने कहा, "अच्छा बारी-बारी से हम उसपर सवार होगे, और अपना मार्ग उस घोडे की सूझ पर ही छोड़ देंगे। कहा है वह घोड़ा ?"

"पहले उसकी प्यास बुझाने के लिए, तुम मुझे जल के सोते का पता बताओ।"

"ऐसे ही मेरे शब्दो से क्या तुम उसे पा जाओगे ? विधि के इस

विधान को पूर्णता देने के लिए मैं तुम्हारे साथ चलूं भी तो कैसे ?"

"हां, तुम विश्रांत हो, यहीं ठहरी रहो। मैं जल्दी से पहले घोड़े को ही यहां ले आता हूं।" कहकर रामचंद्र फिर वहीं पर खड़ा रह गया।

"क्यों, किस दुविधा में अचल रह गये ?"

सचमुच ही इस शंका ने उसे अधिकृत कर लिया था कि कहीं यह रूपवती अन्यत्र न उड़ जाये। वह उसे किसी स्वप्न, कल्पना या देवलोक की सृष्टि समझने लग गया था।

उसका कोई उत्तर न पाकर पद्मिनी ने कहा, "तुम्हारी उलझन मेरी समझ में आ गयी। नहीं, मैं अब कहीं नहीं जा सकती। तुम्हारा साथ ही मेरा भाग्यलेख हो गया है। अच्छा चलो, मैं अपनी विश्रांति की उपेक्षा कर तुम्हारे ही साथ चलती हूं। चलो, वह जल का स्रोत इधर है।"

रामचंद्र ने पद्मिनी की उस सहृदयता पर टूट कर पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरे नाम से क्या तुम मुझे पकड़ लोगे ? जब साक्षात् ही तुम्हारे साथ चल रही हूं, तो उससे क्या करोगे ?" वह जल्दी-जल्दी आगे को चरण बढ़ाने लगी।

"ठहरो, इतनी शीघ्रता से क्यों चली जा रही हो ? आगे-आगे मैं चलूंगा। मुझे ज्ञात है—घोड़ा कहां पर बंधा है। फिर तुमने अपना नाम भी नहीं बताया। अगर कहीं तुम ओझल हो गयी, इस निबिड़ अंधकार में, तो तुम्हें कैसे पुकारूंगा ?" वह दौड़कर उसका हाथ पकड़ने लगा।

"हमारे बीच की दूरी विनष्ट न होगी। मेरा हाथ पकड़ लेना ही क्या तुम्हारे साहस और बल का विज्ञापन है ? हाथ पकड़कर मेरा सहचार क्या, तुम तो मेरे अनुचर होने योग्य भी नहीं हो।"

रामचंद्र चुप रह गया तो फिर उसको कहना पड़ा, "अच्छा लो, यही सही। तुम ही आगे-आगे चलो।"

ऐसा ही किया गया। रामचंद्र पद्मिनी की छाया और स्पर्श बचाकर आगे निकलकर चला। घोड़े की हिनहिनाहट पकड़कर वे तुरंत ही उसके निकट पहुंच गये।

घोड़े का रूप-रंग देखकर वह रूपसी बहुत प्रसन्न हो गयी, उसकी

गरदन थपथपाकर कहने लगी, "यह तो बड़ा सुंदर घोड़ा है। हां, इसे ही मैंने अपने स्वप्नों में देखा है। देखना ही क्या, मैंने इसपर सवारी भी की है। इस घोड़े का नाम क्या है?"

"इसका नाम है—पवन! यह तो बता दिया मैंने। अपना नाम तुम्हारे नाम के उत्तर में ही बताऊंगा।"

"मैं पूछ ही कब रही हूं?" उसने घोड़े को खोलते हुए कहा, "मैं अपने स्वप्न के इस वाहन को स्थूल जगत् में चढ़कर पहचान लेती, पर यह तृषित है, पहले मुझे इसकी आवश्यकता पूरी करनी होगी।"

पद्मिनी पवन की लगाम लेकर चली। पवन उससे भी आगे-आगे चलने लगा। कदाचित् उसने स्रोत की अवस्थिति सूंघ ली थी। पद्मिनी ने भी इस सत्य को समर्थित किया। वे लोग शीघ्र ही जलाशय पर पहुंच गये।

घोड़ा जब एक ही सांस में जल पीकर निश्चिंत हो गया तो रामचंद्र अपनी कमर खोलते हुए बोला, "सुंदरी, तुम्हें मेरी कमर में बंधी हुई पूरियां खा लेने में क्या कोई संकोच है?"

"पूरियां खा लेने की बात तो एक ओर रही, तुम्हारा यह संबोधन ग्रहण कर लेने में मुझे घोर आपत्ति है।"

"कौन-सा अपशब्द निकल गया मेरे मुख से? सुंदरी ही क्यों, तुम अपरिमेय सुंदरी हो।"

पद्मिनी का रोष बढ़ गया। उसने पवन की लगाम नहीं छोड़ी, पर पीठ फिराकर बोली, "जाओ, जहां तुम्हारा मार्ग हो। मुझे ऐसे व्यक्ति का सहचार स्वीकार नहीं। मेरे सौंदर्य पर परिक्रमित ऐसे तुम होते कौन हो?"

वह चुप खड़ा रह गया।

"नहीं, घोड़ा तुम्हें नहीं दूंगी। वह मेरे स्वप्न-जगत् की संपत्ति, आज खुलकर बाहरी जगत् में आ गया तो उसका मोल ले लो। चाहे मेरे किसी भी एक या एकाधिक आभूषण से। बोलो!"

"तुम्हारे आभूषण पहनकर मैं क्यों तुम्हें विरक्त करूं? उनके बदले मुझे क्षमा दो, अपराध की। अब जैसी भी आज्ञा दोगी, वही किया

जायेगा।"

"अब प्रकाश धूमिल हो गया, नहीं तो मैं तुम्हें अपनी हथेली पढ़ा देती। अगर तुम्हारे कुछ भी आंख होती तो तुम्हें पक्का विश्वास हो जाता कि मेरी हथेली में महारानी बन जाने का मार्ग खुला है।"

अब रामचंद्र ने उसे यह समझाना ठीक नहीं समझा कि वह भी राजाओं के ही वंशधरों में से है। जो कुछ वह अपने पूर्वजों से सुनता चला आया है, भूतकाल के सपनों में खोये हुए, उसी राजत्व की ओर वह भी बढ़ना चाहता है।

रामचंद्र ने अपने मन में सोचा,'यह प्रतिद्वंद्विता फिर कभी उसे समझा-कर उसका हाथ पकड़ लिया जायेगा।' प्रकट में अभी उसने हां में हा मिला दी, "महारानी जी, मेरी इस प्रार्थना को आप स्वीकार कर ही लीजिये। यहां पर जल का सुयोग है। हाथ धोने और कुल्ला करने की ठौर है। फिर आगे जल कहीं मिले भी या नहीं।" उसने पूरियों की पोटली खोलकर उसके सामने रख दी।

पद्मिनी हंसकर कहने लगी, "हां महारानी, यह तो मैं होने ही जा रही हूं। पर यह सत्य तुमने कुछ पहले ही खोल दिया। इसीपर चलो, मैं तुमपर अपना सही नाम भी प्रकट कर देती हूं। वैसे जन्मपत्री में मेरा नाम पद्मिनी लिखा गया है। लोगों के मुख से मैं कोटारानी का संबोधन पसंद करती हू। क्योंकि मैं निरंतर दुर्ग और कोटों के ही स्वप्न देखती रहती हू—रात हो या दिन। रात में स्वप्न और दिन में राजदरबारो और युद्धक्षेत्रों का ध्यान। न जाने मैंने कितने संधिपत्रों पर हस्ताक्षर किये हैं, कितने विजय-उत्सवों में जयघोष, और कितनी पराजयों में मैं रक्त धोकर फिर खड्ग उठाकर सन्नद्ध हुई हूं, फिर समर की लालसा लेकर।"

"जय हो, जय हो, कोटारानी की जय हो! भोजन कर लीजिये अब।"

"पहले तुम्हारा नाम मैं भी तो सुन लूं! केवल नाम ही क्यो, जाति भी तो। भोजन करने से पहले यह जान लेने की परंपरा है।"

"मेरा नाम रामचंद्र है। अब मेरे पिता किसानी ही करते है, पर उनके

पूर्वज कश्मीर की राजसभा में प्रतिष्ठित पद पर थे। उनपर राजद्रोह का अपराध लगाया गया और वे अपने प्राण बचाकर, स्त्री-पुत्रों को लेकर, दुर्गम पर्वतों को लांघकर मैदान मे उतर आये। उन्होंने राजदंड से बचने के लिए खड्ग का व्यवसाय छोड़कर हल और कुदाली की शरण ली।"

"और तुम्हें हल भारी लग गया क्या ?" उसने हंसते हुए पूछा।

"यह बात भी नही है। अततः जीवन ठहरा तो हल के ही श्रम पर है।"

"और ये पूरियां उसीके प्रसादरूप में हैं ? तुमने गमछा कमर पर से खोल भी दिया। कितनी हैं गिनती में ?"

"चार नमकीन पूरियां है। इसीलिए सब्जी नही लाया।"

"दो, मुझे दे दो, दो तुम्हारे हिस्से की ! गमछा आगे काम आवेगा। इसे कमर से बांध लो।"

यही किया गया। खा-पीकर दोनो प्रस्थान के लिए तैयार हो गये। अब रामचद्र को कोटारानी से घोड़े पर सवार होने के लिए कुछ भी आग्रह नहीं करना पड़ा। न ही उस महिला ने किसी शिष्टाचार की आवश्यकता समझी। वह झट से रामचद्र के उत्तरीय से अपने हाथ पोंछ चट से घोड़े पर सवार हो गयी, और ऐसा जान पड़ा, उस पशु और उस नारी की जन्म-जन्म की पहचान थी।

रामचद्र के उल्लास-भरे जयघोष से वह शून्य वन प्रांत फिर प्रतिध्वनित हो उठा, "कोटारानी की जय !"

घोड़ा दुलकी चाल से चल पड़ा। उसकी रास अवश्य कोटारानी के हाथ में थी, पर मार्ग की लीक घोड़े की ही मति पर छोड़कर वे दोनों चले, रामचंद्र घोड़े के पीछे-पीछे।

कोटारानी ने एड़ लगायी। घोड़े ने अपनी प्रगति मे वेग भर लिया। रामचंद्र घबराकर बोल उठा, "यह क्या कर रही हो, कोटारानी ?"

कोटारानी बोली, "मैंने अपने मन में तुम्हारा जो चित्र बनाया है, इस वाक्य से क्या वह भूमिसात् न हो जायेगा ?"

"अब तो यह घोड़ा चढ़ाई पर चढ़ने लगा है और तुमने एड़ लगाकर इसकी चाल बढ़ा दी !"

"तो क्या तुम्हारे मन में अपने पूर्वजों की भूमि देखने के लिए उत्कट लालसा नही होती ? फिर डरते क्यों हो ? यदि ऐसा ही है तो तुम लौट जाओ अपने गाव को। मैं तो जाऊंगी ही !"

"आप कहा जायेंगी ?"

"जहा यह घोड़ा ले जायेगा मुझे ! और जहां की तुमने अभी यह मेरी जय घोषित की है। मैं जाऊंगी कश्मीर को। मेरा राजसिंहासन है वहा।"

"तुम कश्मीर जाओगी ?"

"हा, और तुम अपने पूर्वजों पर लगे राजद्रोह के कलंक को अभी तक नही धो सके। क्या तुम इस सत्य को नही जानते कि राजाओं के बदल जाने से राजद्रोह की मान्यताओं में भी परिवर्तन हो जाता है ? तुम्हारे साहस नही है तो अच्छा, मैं इस प्रतिज्ञा को धारण करती हू कि तुम्हारे भाग्य में पड़ी उस वक्र रेखा को बदल दूंगी !"

"इस प्रकार निहत्थी होकर ही क्या ? मेरे पास यह मृगों के आखेट का छोटा-सा धनुष-बाण है। अपनी कमर में बंधा यह छोटा-सा खड्ग भी। ये तुम्हें दे दू तो क्या होगा ?"

"विजय क्या शस्त्र और सेना की अपरिमेयता से होती है ? वह तो बुद्धि का कौशल है। वह क्या धरती पर उतरने से पहले मन में नही खुल जाती ?"

"तुम्हारा तर्क मेरी समझ से बाहर हो गया।"

"तो लौट जाओ। इस दुर्बल हृदय को लेकर तुम मेरे घोड़े की प्रगति का अनुसरण करने में अवश्य ही कही पर ठोकर खाकर रह जाओगे। फिर मैं अपने राजत्व का परिग्रहण करूंगी या एक शिथिल-कायर अनुचर का अनुसंधान ?"

"तुम्हारा घोड़ा ?" रामचंद्र ने अचकचाकर उसकी ओर देखा।

"हां, मेरा घोड़ा ! क्या तुम यह नही जानते, विजय साहसी की, शस्त्र वीर का और घोड़ा सवार का होता है।"

"मान लिया, घोड़ा भी तुम्हारा ही है, पर विजय तुम्हारी हो कैसे जायेगी ? शस्त्र एक भी तो नही है तुम्हारे पास।"

"मेरे ब्रह्मास्त्र को क्या तुम नही जानते ? घोड़े की पूछ पकड़कर भी

यदि तुम मेरे साथ नहीं दौड़ सकते तो मेरे जिस आभूषण में कहो, मैं उसका मूल्य दे दूंगी।"

"उससे क्या करूंगा मैं? मेरी इच्छा की अनुगामिनी कोई भी नहीं है। मैं अभी तक अविवाहित ही हूं।"

"तो विवाह कर खेती-पानी में ही मन लगाओ।"

"नहीं, मैं अब खड्ग की धार पर ही चलूंगा। घोड़ा बेच भी नहीं सकता, उसे वापस भी नहीं ले जा सकता। तुम्हारे साथ ही साथ चलूंगा देवी! अब ये दुर्गम पहाड़ों की चोटियां मुझे खींचती ले जा रही हैं। नियति जहां भी ले जायेगी, मैं चलता ही रहूंगा।"

"हमारे उज्ज्वल स्वप्न ही हमें खींच रहे हैं। अंधकार और अनिश्चय को क्यों नियति के नाम से पुकारते हो?"

"मैंने नियति को निश्चय के नाम में बदल दिया और वह मुझे पुकार उठी।" उसने ऊंचे स्वर मे फिर जयघोष किया, "कोटारानी की जय!"

कई कदराओं से वह प्रतिध्वनि लौटकर तुमुल हो उठी। उस जयकार से कोटारानी के अंग-प्रत्यंग मे एक बिजली कौंध उठी। उसने घोड़े को और एक एड़ दी, घोड़ा वेग से दौड़ गया। रामचंद्र ने भी उसके पीछे भागकर घोड़े की पूंछ पकड़ ली। असंतुलित होकर उसके पैर में ठोकर लगी। वह गिर पड़ा और घोड़े की पूंछ उसके हाथ से छूट गयी।

कोटारानी ने घोड़ा रोककर पूछा, "क्या हो गया?"

वह उठ गया था। सिर की चोट को उसने अपना साफा बढ़ाकर छिपा लिया। बोला, "कुछ नहीं, घोड़े ने अपनी पूंछ ुड़ा ली।"

"फिर पकड़ लो, और अधैर्य पर काबू पाओ।"

कोटारानी ने घोड़ा रोक दिया। रामचंद्र ने उसकी पूंछ फिर पकड़ ली।

"कहो तो धीरे-धीरे चलूं कुछ दूर तक कि तुम अभ्यस्त हो जाओ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा हो। मैं नियति द्वारा अधिकृत हो गया।"

अब जंगल की छाया से वे लोग बाहर निकल आये थे। घोड़े के सामने एक बटिया चमक उठी और फिर उसे अपनी तेज चाल संभाल लेने का अवसर मिल गया। कोटारानी ने भी उसे किंचित् संकेत दे दिया।

कुछ चढ़ाई चढ़ लेने के बाद अब समतल भूमि आ जाने से मार्ग और भी चौड़ा हो गया । आकांक्षा की उमंग मे उन्हें समय का कुछ भी भान नही रहा । जाते-जाते उन्हें कुछ खेत दिखाई देने लगे ।

रामचद्र प्रसन्नतापूर्वक बोल उठा, "अब तो हम किसी गाव के निकट आ गये ।"

"हा, यही बात है । घोड़े की पीठ पर से तो मुझे एक मकान भी दिखाई देने लगा । उसके निकट कुछ वृक्षों की उल्टी परछाई और आकाश को धारण किये एक सरोवर भी ।" कुछ विचारने के बाद कोटारानी बोली, "यहां थकान दूर करने को विश्राम करना इतना आवश्यक नही है, जितना अपना वेश बदल लेना । अब तो हम काफी दूर निकल आये है और मेरे पकड़े जाने की कोई सभावना नही है । वेश बदल लूगी तो उससे बिलकुल ही अतीत हो जाऊंगी । रात अभी बहुत शेष है । वह पूरियों का गमछा और अपना उत्तरीय मुझे दे दो, और तुम जाकर इस मकान के निवासियों को जगाओ । मैं तब तक इस ओट में झट से अपना वेश बदल लेती हू ।"

रामचद्र मकान के प्रवेश-द्वार की ओर बढा । कोटारानी ने घोड़े को एक वृक्ष से बांध दिया । सारे वस्त्रालंकार खोलकर रामचंद्र के उत्तरीय मे गांठ देकर छिपा दिये । मैली चादर जो ओढ़कर लायी थी, उसकी साड़ी पहन ली । पूरियों के गमछे को स्तन-पट्टिका बनाकर उसमें अपनी उभरती हुई आयु बांध ली ।

उधर रामचंद्र ने द्वार खटखटाना आरंभ किया । भीतर से कोई भी नही बोला । शृंखला भीतर से बद थी । इससे अनुमान था कि अवश्य वहां कोई है । जब कोई भी नही बोला तो उसने जोर-जोर से चिल्लाना आरंभ किया, "भाई, द्वार क्यों नही खोलते । हम दूर के परदेसी मार्ग खोकर तुम्हारी शरण में आये है ।"

फिर तो अपना वेश बदलकर कपड़े और जेवरों की पोटली लेकर कोटारानी भी वही आ पहुंची, द्वार खुलवाने मे उसकी सहायता करने को।

अब भीतर से किसीकी आवाज सुनाई दी, "ना भाई, ना, मैं एक अंधी बुढ़िया हूं । मेरी झोपड़ी मे कुछ भी रुपया-पैसा नही है । न मेरे सिवा कोई और प्राणी ही है । इसलिए मेरे द्वार को खुलवाने या उसे तोड़ने की

कोई आवश्यकता ही नही है । तुम लौट क्यों नही जाते ?"

रामचंद्र ने कहा, "मां, हमको अपनी संतान समझ लो । हम तुम्हारी कोई बिगाड़ करने नही आये है । मार्ग मे रात-भर के थके हुए हम दो प्राणी है । तुम्हें बड़ा पुण्य होगा ।"

कोटारानी बोली, "मा, तुमने हमे शायद कोई लुटेरा समझ लिया । इस बात से निडर रहो । जाते समय हम तुम्हारी इस कृपा का बदला अवश्य ही कुछ द्रव्य से चुका सकेंगे ।"

नारी नारी की अनुनय-विनय के वशीभूत हो गयी या शायद द्रव्य के लालच से उसने द्वार खोल दिये और उन दोनों को सिर से पैर तक हाथो से टटोलकर समझ लिया । फिर वह बोली, "हम यहां पुष्कर में श्वेत कमल उपजाते हैं । कश्मीर का राजा जब सूर्य-पूजा के लिए मार्तंड के मदिर मे आता है तो मेरे लड़के को वहा द्वादश कमल के फूल ले जाकर पूजा करानी होती है । यही हमारी वृत्ति है । राजा बारह महीनों मे बारह बार वहा आता है—प्रत्येक रविवार को । जो कुछ मेरे बेटे को राजदरबार से मिलता है, उसकी पूर्ति हम यहा गाय पालकर और थोड़ी-सी खेती से कर लेते है ।"

"मदिर कितनी दूर है ?" रामचद्र ने पूछा ।

"केवल एक दिन का पडाव । तुम कौन, कहां से इस सूने जंगल और आधी रात मे आ गये ?" बुढिया ने पूछा ।

प्रत्युत्तर मे कोटारानी आगे बढ़ गयी । उसने कहा, "हम भी तो मार्तंड के मदिर मे पूजा चढ़ाने आये हैं । मार्ग भूल गये ।"

"मै तुम्हे उसके लिए छोटा मार्ग भी बता दूंगी । दिन निकल आने दो ।"

"महाराज पूजा के लिए कब आते है ?"

शुक्ल पक्ष मे पहले इतवार और कृष्णा पक्ष में अंतिम इतवार को । कल है इतवार । मेरे बेटे को एक-दो दिन पहले ही वहा पहुंच जाना पड़ता है । तुमने खाना खाया भी या नही ?" उन तीर्थयात्रियो पर द्रवित होकर बुढ़िया ने पूछा ।

कोटारानी बोली, "मा, हमे भोजन से अधिक नीद ही आवश्यक है ।"

"ओढ़ने को मैं तुम्हें कंबल चार भी दे सकूंगी, पर चारपाई एक ही है। मैं तो धरती पर सोती हूं।"

रामचंद्र ने कहा, "मैं भी धरती पर ही सो जाऊंगा।"

बुढ़िया ने पूछा, "यह महिला तुम्हारी कौन है?"

रामचंद्र ने इसका कोई उत्तर न देकर कहा, "हमारे साथ एक घोड़ा भी है।"

"तो क्या है? उसे गौशाला में बांध आओ। कोई खटका नहीं। बाहर घास रखी है। दो पूली उसे भी डाल आना। खाना या न खाना उसकी इच्छा की बात है।"

पहले रामचंद्र घोड़े को गौशाला में बांधने चला गया। बुढ़िया ने पद्मिनी के कंधे को टटोलकर, उसपर हाथ रखकर पूछा, "वह घोड़े को बांधने चला गया क्या?"

"हां!"

फिर उसने कोटारानी के मुखमंडल को टटोलकर देखा। उसके वक्ष पर अपना हाथ घुमाकर उसके रूप-यौवन की थाह ली, फिर पूछा, "ये कौन हैं तुम्हारे?"

"कोई नहीं।"

"फिर मैं जहां सोती हूं, तुम भी वहीं चलो, पर वहां···।"

"नहीं मां, मैं इस अविश्वास से अपने मन को दुर्बल नहीं बनाऊंगी। आपके साथ मैं किसी असुविधा को नहीं बढ़ाऊंगी।"

"तुम जानो फिर! मैं अंधी हूं। मैं रात में कुछ भी नहीं देख पाती। फिर तुम्हें क्या सलाह दूं? चलो भीतर कमरे में वही एक खटिया है।"

बुढ़िया पद्मिनी को भीतर ले गयी। वहीं एक चारपाई रखी थी, उसी-पर चारों कंबल पड़े थे। उसने कोटारानी को यह सब बता दिया।

"मैं यहां दिया जला देती। राख में दबे हुए उपले पर मैं किसी तरह घास-फूस डालकर लपट उठा भी लेती, पर तेल की कमी है।"

"कोई चिंता नहीं, हमारे मन का निश्चय ही मार्ग का उजाला है।"

रामचंद्र ने घोड़े को गौशाला में बांध दिया। उसकी जीन और लगाम वहीं खोलकर रख दी। उसने घोड़े के सामने घास की पूली भी रख

पर उस पशु ने उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

रामचंद्र अच्छी तरह गौशाला का द्वार बंद कर ढूंढ़ता हुआ अपने कमरे में चला गया। उसने कहा, "महारानी जी, आप अकेली ही हैं?"

"हां, धीरे-धीरे बोलो। गृहस्वामिनी चली गयी हैं। आंखों की ज्योति चली जाने से वे शब्द सुनने में बड़ी तेज हैं। धीरे-धीरे बोलो। मेरा परिचय क्या अभी इस प्रकार खोल देने के लिए है?"

रामचंद्र ने मंद स्वर में कहा, "यही होगा।"

"मैंने दो कंबल तुम्हारे लिए भूमि पर रख दिये हैं। दो कंबल लेकर मैं चारपाई पर हूं।"

रामचंद्र ने और भी धीरे-धीरे पूछा, "वह आभूषणों की पोटली भी क्या संभाल कर रख ली?"

"हां, सिरहाने ही तो।"

"मैं बाहर पीपल के पेड़ के चबूतरे पर सो आऊं क्या?"

"अगर ये दोनों कंबल तुम्हारे जाड़े का तिरस्कार कर भी दें, तो क्या: रात में कोई भूखा बाघ तुम्हारा सम्मान कर देगा। यहां घनघोर जंगल है।"

"धनुष-बाण के सिवा क्या मेरे पास खड्ग नहीं है?"

"उसका उपयोग इसी कमरे में हो सकता है।"

रामचंद्र ने बहुत ही धीरे-धीरे पूछा, "तुम्हारा मतलब है मैं भी इसी कमरे में सो रहूं।"

"रात काली है, नींद में नियम भी बंधा है तो क्या हुआ? तुम धरती पर सो जाओ। मैं चारपाई पर हूं। धनुष-बाण और खड्ग हम दोनों के बीच में साक्षी होकर रहेगा।"

ऐसा ही किया गया। रामचंद्र बोला, "अब मैं सोता हूं।"

"हां, सो जाओ। सत्य कभी नहीं सोता।"

कोटारानी तो तुरंत ही सो गयी और रामचंद्र सोचता रह गया, 'कौन है यह विचित्र नारी? इसको पत्नी-रूप में प्राप्त करने से क्या इसका अनुचर हो जाना ही श्रेष्ठ नहीं है?'

फिर-फिरकर रामचंद्र के मन में उस सुंदरी की अनुकंपा जीत लेने

के उपाय उठते। कभी वह उसका प्रणयी बन जाने की उतावली से भर जाता, कभी उस अकेली अबला का सहायक रक्षक। वह बड़ी देर तक यह लड़ाई लड़ता रहा। अंत में उसे भी नींद आ ही गयी।

बहुत प्रभात में ही कोटारानी उठ बैठी। उसने देखा रामचंद्र अभी गहरी नींद में ही था। उसने उठाया नहीं उसे। चारपाई पर बैठी-बैठी विचारने लगी, "क्या यह बड़ा विचित्र संयोग नहीं जान पड़ता? हम अनायास ही मार्त्तंड मंदिर के निकट हैं, और वहां सूर्य की पूजा में कश्मीर का नरेश। उसके राजभवन में उसका मन जीतने के लिए मेरा जाना असंभव होता। बीच में मुझे कई दावेदारों से लड़ना पड़ता। यहां सूर्य के मंदिर में मुझे रोकनेवाला कौन है?"

वह अपने मन में इसी विचार की दृढ़ता को जगाने लगी।

उसने अपने ध्यान में सूर्य के मंदिर की स्पष्ट कल्पना की और उस पत्थर की पूजा करने वाले राजा को भी देखा। क्या वह उसे छोड़कर हाड़-चाम की प्रतिमा पर भी खिंच सकता है? देखा जायेगा। उसने अपने मन की दृढ़ता को और भी कसकर बांध लिया। अंत में वह नींद में खो गयी और फिर अपने चिरकाल के सपनों को उभारने लगी।

बहुत प्रकाश फैल गया था अब बाहर। बुढ़िया द्वार खुलवाकर भीतर आ गयी। कोटारानी ने अब बुढ़िया के स्पष्ट रूप को देखा और खिंचकर उसके चरणों पर प्रणाम किया।

"तुम तो बहुत जल्दी उठ गयी हो। अनजानी जगह में नींद में बाधा पड़ जाती है।"

कोटारानी ने इसके उत्तर में कहा, "मां, यह बर्तन लेकर क्या पानी भरने जा रही हो? कुआं कहां पर है मुझे बता दीजिये।"

उसने इसका कोई उत्तर न देकर कहा, "बेटी, तुम्हारे ये वस्त्र मैले ही नहीं, अंग पर अधूरे भी हैं। पर तुम्हारे मुख की ज्योति और मन का शील इस बात का साक्षी है कि तुम अच्छे कुल में उत्पन्न हुई हो। मार्त्तंड के मंदिर की मनौती मानकर आयी हो—कितनी दूर से? क्या तुम्हारा विवाह हो गया?"

कोटारानी ने इन दोनों प्रश्नों को ओट में रखकर कहा, "रात तो

जो सपन्नता झलक रही है, वह तुम्हारे साथ की इस महिला के अंग पर क्यों नहीं है? रात मे अंधकार और अपनी आंखों की दुर्बलता से मैं इस भेद को नहीं पा सकी।"

"नहीं माता जी, भेद कुछ भी नहीं है। लोगों की कुदृष्टि से बचने के लिए ही उन्होंने अपने को जीर्ण और मलिन वेश में लपेट लिया था। वह अपने साथ अपनी वास्तविकता की गठरी ले गयी है। जब नहा-धोकर आवेंगी तो आप उन्हें ठीक-ठीक पहचान लेंगी।"

"केवल देखने से ही क्या हो जायेगा? जब तक मेरे कान तुमसे उसका परिचय न सुन लेंगे, बात अधूरी ही रहेगी।"

"वह तो सब बाद की बात है। अभी तो हम बड़ी शीघ्रता मे है। आज के रविवार की इस सूर्य-पूजा को संपन्न कर ही लेना चाहते हैं। सूर्यास्त से बहुत पहले ही हमें वहां पहुंच जाना होगा। न जाने हमारे और मंदिर के बीच की दूरी हमारी अनभिज्ञता से कितनी बढ़ जाये।"

"तुम बड़ी सरलता से समय पर ही वहां पहुंच जाओगे और मार्ग बहुत सीधा और स्पष्ट है, पर बिना दूध पिलाये मैं तुम्हें जाने ही न दूंगी।"

इतने ही मे नवीन वस्त्रों मे सुसज्जित होकर कोटारानी वहीं पर आ गयीं। स्नान के अनंतर उसके अंग-प्रत्यंग मे जो आभा निखर आयी थी, वह उसके आच्छादन में और भी प्रखर हो उठी। अब तो माता उसका परिचय जानने के लिए अत्यंत लालायित हो गयी।

कोटारानी ने अभी अपने आभूषणों में से किसीको पहना नहीं था, पर माता ने उसके बायें हाथ में बंधे विवाह के कंकण को देख ही लिया, जिसके कारण उसके मन मे गंभीर रहस्य चक्कर काटने लगा।

मंदिर में समय पर पहुंच जाने की जल्दी पर स्नेहमयी माता की मनुहार उन्हें माननी ही पड़ी। और वे एक-एक घूंट दूध पी लेने के लिए राजी हो गये।

बुढ़िया ने दूध गरम करने को रख दिया और कोटारानी के पास आकर बोली, "मेरे बेटे का नाम शोभन है। वह महाराज को पूजा कराने के लिए मंदिर में गया है। मेरा उल्लेख करना, वह तुम्हें भी विधिपूर्वक

पूजा करा देगा। महाराज की पूजा के कारण यदि मंदिर-प्रवेश में भी कोई कठिनाई हुई तो शोभन उसमे भी सहायक हो जायेगा।" कहती हुई वह उनके लिए दूध लेने चली गयी।

कोटारानी हाथ में बंधे उस कंकण की गांठ पर अपने नख चुभाने लगीं। फिर रुककर बोली, "इसपर माता की बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि देर तक खिंची की खिंची ही रह गयी थी। अब क्या हो? मैं इसे नही खोलूगी। उसे कोई समाधान दे दूंगी। और कदाचित् यह अपना कोई उपयोग मांगता है।"

माता दूध पिलाती हुई बोली, "तुम्हारे हाथ मे बंधे इस कंकण का क्या अर्थ है? क्या पूजा के लिए ही इसकी कोई परपरा है? मैं तो समझती हू विवाह के अवसर पर ही इसके बांधे जाने की प्रथा है।"

"हां, विवाह के लिए ही तो।"

"विवाह क्या मदिर मे होगा? अग्नि के बदले क्या सूर्य की साक्षी ली जायेगी?"

"हां, मां, तुम्हारा अनुमान अपने प्रत्येक अक्षर मे सही है।"

"अच्छा तो कन्या-दान करने वाले तुम्हारे चाचा है, तो वर?"

दूध पीकर कोटारानी घोड़े पर सवार हो चलती बनी। रामचद्र उसके पीछे दौड़ गया और माता अपने प्रश्न मे ही उत्तर खोजती रह गयी। कोटारानी ने जाते-जाते उसके ऊपर एक सोने का सिक्का फेंक दिया।

उस रविवार को पूजा मे पहुचने के लिए वे बड़ी उतावली से आगे को बढ़ते जा रहे थे। दोपहर होते ही अचानक घोड़े की पीठ पर से कोटारानी चिल्ला उठी, "मदिर आ गया। मैंने उसके शिखर पर उड़ती हुई पताका में उनके चक्र को पहचान लिया।"

और रामचंद्र ने भी इसका समर्थन किया, "हां, मैं भी शंख-घंट और

बाजों की मंद्र ध्वनि सुन रहा हूं।"

कोटारानी झट से घोड़े पर से उतर पड़ी।

"क्यों, अभी क्यों उतर गयी? क्या देवता को आदर देने के लिए नंगे पैर पैदल ही जाना होगा?"

"अब आभूषण पहन लेने का समय आ गया।"

कोटारानी जब सब आभूषणों में सज-धजकर तैयार हो गयी तो रामचंद्र उसका सईस जैसा दिखाई देने लगा। वह घोड़े की लगाम पकड़कर आगे-आगे जाती हुई उस सुंदरी का अनुसरण कर रहा था।

मंदिर के निकट जाकर उन दोनों ने देखा, बड़ी परिधि में वह कनातों से घेर दिया गया था। जो दो मार्ग प्रवेश-प्रस्थान के छोड़ दिये गये थे, वहां पर नंगी तलवारें लिए दाहिने-बायें दो सैनिक पहरा दे रहे थे।

यह सब देखकर रामचंद्र बोला, "देखो जी, अब क्या हो? अनुनय-विनय हमारी मान लेंगे क्या ये सैनिक?"

"बड़े कायर हो तुम। इतनी दूरी पर उनके खड्गों की चमक से ही घायल हो गये क्या? चलो, मैं आगे चलती हूं। मेरा अनुसरण करो।"

कोटारानी बड़े साहस से भरी, रामचंद्र के कंधे पर का धनुष और कटि में बंधी तलवार लेकर आगे बढ़ी। उसके रूप की तेजस्विता और समुन्नत दर्प के वशीभूत होकर दोनों प्रहरियों ने माथा विनत कर आंखें नीची कर लीं।

कोटारानी ने उनके उत्तोलित खड्ग भी अपने दोनों हाथों से नीचे गिरा दिये। सहसा उन्होंने अपने दोनों खड्गों को मिलाकर अपने भूले गये कर्त्तव्य को याद किया और उसका मार्ग प्रतिबंधित कर कहा, "नहीं, मंदिर में जाने की किसीको भी आज्ञा नहीं है। भीतर महाराज सहदेव भगवान भास्कर की पूजा में हैं।"

"मैं भी पूजा ही के लिए आयी हूं बड़ी दूर से, इसी रविवार के सुदिन को पकड़ने को। हट जाओ।"

"नहीं, यही राजाज्ञा है।"

"राजाज्ञा किसी कुमार्गी की पकड़ के लिए हो सकती है। भगवान केवल राजा का ही नहीं, सारी प्रजा का है। मुझे अवश्य ही, आज ही के

मुहूर्त मे भगवान की पूजा करनी है । हट जाओ । छोड़ो हमारा मार्ग ।"

कोटारानी की प्रभुता और तेजस्विता-भरी वाणी से दोनों प्रहरी सहम उठे । एक ने घबराकर पूछा, "आप कौन है ?"

"मैं कोटारानी हूं । महाराज से जाकर कह दो । मुझे अवश्य ही अभी पूजा करनी है । यदि उन्होंने मुझे रोका तो उनकी राजाज्ञा को ठुकरा दूगी और तुमने बाधा दी तो तुम्हारी तलवारों के टुकड़े कर भीतर चली जाऊंगी ।"

दोनों सिपाहियो ने आपस मे मत्रणा की और एक भीतर जाते हुए बोला, "मैं अभी महाराज का अभिमत लेकर आता हू। तब तक आप क्षण-भर यहा ठहरिये ।"

सिपाही दौड़ते हुए मंदिर के भीतर चला गया। पुरोहित ऊचे स्वर से *मंत्र-पाठ कर रहा था : राजा अपने दोनो हाथो में कमल का फूल लिए* उसके समर्पण की प्रतीक्षा कर रहा था। सिपाही को आगे बढ़कर बाधा पहुंचाने का साहस नही हुआ ।

मंत्र की पूर्णता पर महाराज ने वह श्वेत कमल देवता के चरणों में चढ़ा दिया । प्रहरी पर दृष्टि पड़ते ही उन्होने पूछा, "क्या है ?"

"महाराज की जय हो ! दो पूजार्थी महाराज की आज्ञा का उल्लंघन कर मंदिर के भीतर घुस आना चाहते है ।"

महाराज ने ऊंचे स्वर मे कहा, "क्या उन्हें तलवारों का भय दिखा-कर भी रुकने को नही कहा गया है ?"

"वह कहती है, भगवान पर केवल राजा का ही अधिकार नही, मेरा भी है ।"

"इतनी निर्भय वह है कौन ?"

"अपनेको कही की रानी बताती है ।"

"क्या उसका पति भी साथ मे है ?"

"जो साथ में है, वह पति तो नही, उसका अनुचर-सा जान पड़ता है ।"

"उसका पति कहां है ?"

हाथ जोड़कर सैनिक बोला, "यह उन्होने कुछ भी नही बताया, न ही

बाजों की मंद्र ध्वनि सुन रहा हूं।"

कोटारानी झट से घोड़े पर से उतर पड़ी।

"क्यों, अभी क्यों उतर गयी ? क्या देवता को आदर देने के लिए नंगे पैर पैदल ही जाना होगा ?"

"अब आभूषण पहन लेने का समय आ गया।"

कोटारानी जब सब आभूषणों में सज-धजकर तैयार हो गयी तो रामचंद्र उसका सईस जैसा दिखाई देने लगा। वह घोड़े की लगाम पकड़कर आगे-आगे जाती हुई उस सुंदरी का अनुसरण कर रहा था।

मंदिर के निकट जाकर उन दोनों ने देखा, बड़ी परिधि में वह कनातों से घेर दिया गया था। जो दो मार्ग प्रवेश-प्रस्थान के छोड़ दिये गये थे, वहां पर नंगी तलवारें लिए दाहिने-बायें दो सैनिक पहरा दे रहे थे।

यह सब देखकर रामचंद्र बोला, "देवी जी, अब क्या हो ? अनुनय-विनय हमारी मान लेंगे क्या ये सैनिक ?"

"बड़े कायर हो तुम। इतनी दूरी पर उनके खड्गों की चमक से ही घायल हो गये क्या ? चलो, मैं आगे चलती हूं। मेरा अनुसरण करो।"

कोटारानी बड़े साहस से भरी, रामचंद्र के कंधे पर का धनुष और कटि में बंधी तलवार लेकर आगे बढ़ी। उसके रूप की तेजस्विता और समुन्नत दर्प के वशीभूत होकर दोनों प्रहरियों ने माथा विनत कर आंखें नीची कर ली।

कोटारानी ने उनके उत्तोलित खड्ग भी अपने दोनों हाथों से नीचे गिरा दिये। सहसा उन्होंने अपने दोनों खड्गों को मिलाकर अपने भूले गये कर्त्तव्य को याद किया और उसका मार्ग प्रतिबंधित कर कहा, "नहीं, मंदिर में जाने की किसीको भी आज्ञा नहीं है। भीतर महाराज सहदेव भगवान भास्कर की पूजा में है।"

"मैं भी पूजा ही के लिए आयी हूं बड़ी दूर से, इसी रविवार के सुदिन को पकड़ने को। हट जाओ।"

"नहीं, यही राजाज्ञा है।"

"राजाज्ञा किसी कुमार्गी को पकड़ के लिए हो सकती है। भगवान केवल राजा का ही नहीं, सारी प्रजा का है। मुझे अवश्य ही, आज ही के

मुहूर्त में भगवान की पूजा करनी है । हट जाओ । छोड़ो हमारा मार्ग ।"

कोटारानी की प्रभुता और तेजस्विता-भरी वाणी से दोनों प्रहरी सहम उठे । एक ने घबराकर पूछा, "आप कौन है ?"

"मैं कोटारानी हूं । महाराज से जाकर कह दो । मुझे अवश्य ही अभी पूजा करनी है । यदि उन्होंने मुझे रोका तो उनकी राजाज्ञा को ठुकरा दूंगी और तुमने बाधा दी तो तुम्हारी तलवारों के टुकड़े कर भीतर चली जाऊंगी ।"

दोनों सिपाहियों ने आपस में मंत्रणा की और एक भीतर जाते हुए बोला, "मैं अभी महाराज का अभिमत लेकर आता हू। तब तक आप क्षण-भर यहा ठहरिये ।"

सिपाही दौड़ते हुए मंदिर के भीतर चला गया । पुरोहित ऊंचे स्वर से मंत्र-पाठ कर रहा था . राजा अपने दोनो हाथो मे कमल का फूल लिए उसके समर्पण की प्रतीक्षा कर रहा था । सिपाही को आगे बढ़कर बाधा पहुंचाने का साहस नही हुआ ।

मंत्र की पूर्णता पर महाराज ने वह श्वेत कमल देवता के चरणों में चढ़ा दिया । प्रहरी पर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने पूछा, "क्या है ?"

"महाराज की जय हो ! दो पूजार्थी महाराज की आज्ञा का उल्लंघन कर मंदिर के भीतर घुस आना चाहते है ।"

महाराज ने ऊंचे स्वर मे कहा, "क्या उन्हें तलवारों का भय दिखा-कर भी रुकने को नही कहा गया है ?"

"वह कहती हैं, भगवान पर केवल राजा का ही अधिकार नही, मेरा भी है ।"

"इतनी निर्भय वह है कौन ?"

"अपनेको कही की रानी बताती है ।"

"क्या उसका पति भी साथ मे है ?"

"जो साथ में है, वह पति तो नही, उसका अनुचर-सा जान पड़ता है ।"

"उसका पति कहा है ?"

हाथ जोड़कर सैनिक बोला, "यह उन्होने कुछ भी नही बताया, न ही

मैंने उनके मुख पर ही सौभाग्य का कोई चिह्न देखा।"

महाराज ने पूछा, "शोभन, अभी कितने कमल शेष हैं?"

उत्तर मिला, "पाच।"

"क्या पाचों कमल एक ही मत्र से?"

शोभन ने तत्काल कहा, "नही महाराज।" उसने आठवां कमल राजा के हाथों में रखा और मत्र पढ़ने लगा।

सैनिक कोई निर्णय न पाकर वही खड़ा रह गया।

मदिर-प्रवेश की अधीरता मे जब कोटारानी को बाहर पल में पहर बीतने लगा तो उसने प्रहरी के हाथ का खड्ग छीनकर दूर फेंक दिया और तडित् वेग से भीतर घुस गयी। रामचद्र को साहस नही हो सका कि वह भी उसका अनुकरण कर ले।

शोभन के अधरो पर पूजा का मत्र था और राजा के कर-संपुट में समर्पण का श्वेत कमल। कोटारानी सीधी जाकर राजा के पार्श्व मे खड़ी हो गयी।

प्रहरी चिल्लाया, "महाराज, यही है वह महिला! यह आपके अनुशासन की अवज्ञा कर भीतर हो चली आयी। अकेला द्वार पर का प्रहरी इन्हें रोक भी न सका होगा।"

सहदेव कोटारानी को देखकर मंत्रमुग्ध हो गया और शोभन के अधरों पर का मंत्र वही कहीं समा गया। अब तो साहस पाकर रामचंद्र भी वही घुस आया था।

बीच ही मे मंत्र की परिसमाप्ति पर सहदेव ने वह कमल भगवान मार्तंड के चरणों के बदले कोटारानी के शीर्ष पर रख दिया। रानी ने अपने जूड़े मे खोंसकर उसे स्थिरता दे दी।

सहदेव की दृष्टि कोटारानी पर अचल हो गयी। वह अपने समस्त परिवेश मे मानो उसके भीतर समा गया।

मंत्र के स्थान पर शोभन के मुंह से निकल गया, "तुम कौन, कहा से आये हो?"

रामचंद्र ने उत्तर दिया, "ये कोटा की कुमारी राजकन्या हैं, इन्होने स्वप्न मे मार्त्तंड की पूजा की मनौती मानी है। देवता ने इन्हें वर दिया है

कि ये कहां की महारानी बनेंगी।"

सहदेव उठकर खड़ा हो गया। उसने बड़ी लालसा-भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा, "कहां की महारानी बनेंगी ?"

कोटारानी ने उत्तर में कहा, "जहां का सयोग होगा।"

"मैं मार्त्तंड की पूजा में हूं। मेरे मुख से झूठ न निकलेगा। मैं बता दूं, ये कहां की महारानी बनेंगी ?"

"हम आपका निर्णय सुनें भी तो।"

"ये कश्मीर की महारानी बनेंगी। मैं कश्मीर का महाराजा सहदेव हूं।"

कोटारानी ने पीठ फिराकर कहा, "नहीं !"

सहदेव के सारे व्यक्तित्व पर पानी पड़ गया। उसने रामचंद्र से कहा, "तुम इन्हें समझाते क्यों नहीं ?"

"मैं इनका हित-अहित क्या जानूं ?"

"तुम्हारा इस सुंदरी से क्या सबंध है ?"

"हां, है।" और रामचंद्र उस संबंध को स्पष्ट करते हुए रह गया।

"मैं धरती के स्वर्ग कश्मीर का अधिपति हूं। धन-धान्य, फल-फूलों से समृद्ध मेरा राज्य है। वेद-शास्त्रों में पारंगत, कला-कौशल में सुदक्ष, शूर-वीरता में प्रसिद्ध मेरी प्रजा है। ऐसे सहदेव को छोड़कर और ये किसकी महारानी बनेंगी ? इस देवता के मंदिर में हमारा मिलन क्या यही वह दैवी संयोग नहीं है ?" सहदेव ने कोटारानी की ओर हाथ उठाकर पूछा।

"नहीं !" कोटारानी ने फिर उसी दृढ़तापूर्वक कहा, "क्योंकि महा-राज आपके राज्य में बड़ी दुर्दशा है। प्रजा सुखी नहीं है। मंत्रियों में वैमनस्य है। पंडित लालची हैं, कृषक आलसी हैं, व्यापारी ठग हैं, राज-कर्मचारी विषयी और सेना कायर है।"

"यदि तुम मेरी हो जाओ तो मैं तुमसे प्रकाश लेकर इन सबको ठीक मार्ग पर ले आऊंगा।"

कोटारानी ने पूछा, "आपके रनिवास में और कितनी रानियां हैं ?"

सहदेव ने उत्तर दिया, "मैं तुम्हें पटरानी बनाऊंगा।"

कोटारानी ने सहदेव की ओर हंसते हुए देखा।

रामचन्द्र ने पूछा, "आपकी पहली पटरानी कहां जायेंगी ?"

"जायेंगी कहीं नहीं। वहीं रहेंगी। उनके भवन की छत पर एक भवन और बना दिया जायेगा। उसीमें इनका निवास होगा।"

"नहीं, मैं वहां नहीं रहूंगी। ऊपर-नीचे चढ़ते-उतरते हुए आपकी दूसरी रखैल रानियां मुझे धक्का देकर गिरा देंगी या मेरा गला घोंटकर मार डालेंगी।"

"तुम्हारे लिए अलग प्रासाद बना दिया जायेगा।"

सहदेव के इस प्रस्ताव पर भी जब ये दोनों चुप ही रहे, तो उसने रामचन्द्र के कंधे पर हाथ रखकर कहा,"मैं तुम्हें अपनी राजसभा में प्रधान-मंत्री के पद पर प्रतिष्ठा दे दूंगा।"

रामचन्द्र के मुख पर प्रसन्नता उभर आयी।

सहदेव ने उसे सहमत जानकर पूछा, "क्या तुम इनके बड़े भाई हो ?"

कोटारानी ने तमक कर विरोध किया, "मेरे चाचा हैं।"

"तब भी क्या तुम इनकी समझ से काम न लोगी ?"

कोटारानी बोली, "अच्छा, अभी आपके सम्मान्य अतिथि होकर हम रह सकते हैं। आपको हमारे निवास और भोजन की समुचित व्यवस्था करनी पड़ेगी।"

"वह तो करनी ही पड़ेगी। आप लोग क्या करेंगे ?"

रामचन्द्र ने उत्तर दिया, "हमें आपकी राजसभा में स्थान मिलेगा। वहां हम आपकी राज्य-प्रणाली का अध्ययन करेंगे, उसके सुधार के उपायों के लिए आपको मन्त्रणा देंगे। हम परोक्ष रूप से आपकी प्रजा के साथ भी संपर्क रखेंगे और उनकी प्रतिक्रिया पर भी आपको ठीक-ठीक राय देंगे।"

"यह तो सब हो ही जायेगा, पर इनके साथ मेरा विवाह कब होगा ?"

"ठहरो, मुझे अभी पूजा करनी है।"

वह पूजा में बैठ गयी। विवाह के लिए उसके हाथ में जो कंकण बांधा गया था, उसमें का सोने का सिक्का तो वह शोभन की माता को दे आयी थी। शेष सब उसने मार्त्तंड के चरणों पर रख दिया। साथ ही एक माला और निकालकर रख दी।

सहदेव ने पूछा, "यह क्या है?"

"मेरा मगल-सूत्र।"

"इसे कब पहनोगी?"

"जब मेरा विवाह हो जायेगा।"

"वह कब होगा?"

"जब आपके राज्य में किसीको भी कष्ट नही होगा। अधिकारी वर्ग कर्त्तव्यपरायण, प्रजा कर्मरत-सुखी-सतुष्ट हो जायेगी, तब।" रामचंद्र ने कोटारानी के बदले उत्तर दिया।

सहदेव उत्साह से भरकर बोला, "तुम्हारे भीतर मेरे राज्य मे इस प्रकाश को प्रसारित कर देने की प्रतिभा जान पड़ती है। तुम्हारा क्या नाम है?"

"इस सेवक को रामचद्र कहते हैं।"

"अभी यहीं, मार्त्तंड को साक्षी कर मैं तुम्हें अपना प्रधानमत्री नियुक्त करता हूं।"

"नहीं महाराज, मुझे सबसे ऊपर की सीढी से नीचे गिर जाने का भय है। अभी आपके प्रधानमत्री कौन है?"

"वे अग्नि के उपासक है, मैं सूर्य का।"

"दोनो मे भेद समझना ही तो अहंवादिता है। चलो।" कोटारानी पूजा सपन्न कर सहसा रामचद्र को लेकर बाहर चली आयी।

जाते-जाते मार्ग मे रामचद्र ने पूछा, "विवाह का ककण तो तुम भीतर ही भूल आयी हो।"

"देवता के चरणों पर से उसे कौन उठा सकता है? चलो, चलते रहो।"

रामचद्र ने बड़ी चिंता से भरकर पूछा, "कहा?"

"घोड़े के पास। वह हमारे यहां से चले जाने की सूचना है। चिंता क्यो करते हो? मेरी पोटली मे बहुत सुवर्ण है।"

घोड़े के निकट आकर कोटारानी अपनी निरपेक्षा दिखाने के लिए उचककर उसपर सवार हो गयी, "इसकी लगाम?"

रामचद्र ने उसके दोनो टुकड़े अपने दोनों हाथों मे दिखाकर कहा,

"यह तो टूट गयी बीच में।"

"शायद तुम यहा से कहीं और जाना नही चाहते। तुम्हारे पूर्वजों की भूमि के इस आग्रह पर ही तुमने इस लगाम को बीच में दो कर दिया है।"

"नही महारानी जी, इसपर मुझे चूहे के दांत दिखाई देते हैं।"

"इस परम सुदर राज्य से बाहर जाना तो मैं भी नही चाहती, पर अपना आकर्षण बढाने के लिए यह दिखाना ही होगा। इसलिए मैं घोड़े से नीचे नही उतरूगी और उनके आने तक तुम इस लगाम को जोड़ने का प्रयत्न करते रहो।"

उन दोनो के चले जाने को कोई अभाव न गिनकर शोभन ने दूसरा श्वेत कमल महाराज सहदेव की ओर बढाते हुए कहा, "लीजिये महाराज, यह छठा कमल, मैं मत्र की आवृत्ति करता हू।"

महाराज ने उसकी ओर हाथ नही बढ़ाया, "छह-सात, आठ-नौ, दस-ग्यारह-बारह, ये सभी कमल देवता ने स्वीकार कर लिए। अब कैसा मंत्र और कैसी पूजा? देवता का वर साक्षात् वधू होकर यहां प्रकट हो गया। चलो, वह रिसाकर चली गयी। सबसे पहले उसे मना लेना है।"

"नही महाराज, वह कहीं जाने वाली नही है। देखिये, उसके विवाह का ककण यही देवता के चरणो पर पडा है।"

बड़ी आशा मे फूलकर सहदेव उस ककण को उठाने बढ़ा, पर शोभन ने उसे रोककर कहा, "ऐसी उद्विग्नता न दिखाइये महाराज, सफलता के द्वार की यह सबसे बड़ी बाधा है।"

"तब लाओ, इन सभी फूलो की ओट मे इस ककण को छिपा दें।"

सहदेव ने वे सभी फूल उठा लिए।

शोभन जल्दी-जल्दी उस समर्पण को मत्र की सार्थकता देने लगा। सहदेव मत्र की पूर्णता से पहले ही उन फूलो को देवता के चरणो पर रख-कर बाहर को दौड गया।

दोनो प्रहरियों ने महाराज के आगमन पर मस्तक विनत कर दिया। सहदेव ने पूछा, "वह कहा गयी?"

दोनों ने एक ही ओर अंगुली निर्दिष्ट की। सहदेव उधर ही दौड़ गया। वहां जाकर देखा, कोटारानी एक सुडौल और श्वेत घोड़े पर चढ़ी

बड़ी सुदर जंच रही थी। रामचंद्र नीचे खड़ा-खड़ा उसकी दो टुकड़ो में विभक्त लगाम को जोड़ने के असफल प्रयत्न में लगा था।

सहदेव ने दूर में रानी पर दृष्टि पडते ही कहा, "क्यों तुम रिस में भरकर चली आयी ?"

"नही तो।" सारा विपर्यास दूर कर रानी बोली।

"बिना कहे-सुने ही चली आयी ?"

"मेरी पूजा हो चुकी थी।"

"इतने शीघ्र ?"

"पूजा क्या समय की दीर्घता है ? वह तो भावना का उत्कर्ष होती है।"

"फिर तुम जा कहा रही हो ?"

"अब यहां आकर और जा ही कहा सकती हू ? यह मेरे स्वप्नो की जन्मभूमि, मेरी भावनाओ का साकाररूप, मेरी आकाक्षाओ का सर्वोच्च हिमाचल, मेरे जन्म की सार्थकता का स्वर्ग ! इसे छोड़कर अब कहा जा सकती हू ?"

"तुम्हारा यह निर्णय स्तुत्य है। तुम कश्मीर की हो, कश्मीर तुम्हारा है। यह घोड़ा अपने चाचा का सम्मान बढाने के लिए उन्हें दे दो। तुम मेरे रथ मे चलो।"

"बिना किसी संबध के तुम्हारे रथ पर जाने से क्या मैं तुम्हारी रखैल हू ?" उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "नही।"

सहदेव अपना-सा मुह लेकर रह गया।

कोटारानी को फिर कुछ याद आया। उसने रामचंद्र से पूछा, "मेरे विवाह का वह कंकण कहा है ?"

इतने में शोभन रेशमी रूमाल मे बंधी हुई कोई चीज लाकर बोला, "देवी जी, यह लीजिये आपका कंकण !"

"शोभन, मैंने इसमें बंधा हुआ सोने का दीनार तुम्हारी माता जी को भेट मे दिया है। यह रूमाल भी उनके पास धरोहर रख दो। उनका मुझे विश्वास है। जब मैं इसके उपयुक्त समय पाऊंगी तो उनके मुख से अपने विवाह का आशीर्वाद प्राप्त करूगी।"

रामचंद्र ने टूटी हुई लगाम में गांठ बाधकर कोटारानी की ओर बढ़ा दी।

वह आगे को बढ़ने लगी। सहदेव ने अधीर होकर पूछा, "तुम कहा जाओगी इस अपरिचित मार्ग से होकर?"

"इसका चप्पा-चप्पा मेरी दृष्टि मे बसा हुआ है। मैं अपने उन सब स्वप्न के चित्रों को चर्मचक्षुओं से देखकर पहचान लूगी। इस राज्य के वन-पर्वतो को गिनूगी। खेतों, किसानों और ग्रामों की दशा देखूगी। फिर तुम्हारी राजधानी के अधिकारियों के उस गर्व को समझूगी, जिसे वे इन श्रमिको के जीवन का आधार मानते है। मेरे चाचा को धरोहर-रूप में ले जाओ। मेरे लौट आने तक वे कही मेरे रहने का प्रबंध करें।"

उस दिन महाराज की पटरानी ने सहदेव के प्रवेश के लिए द्वार खोले ही नही, जब उन्होंने तीन बार सच ही सच कहने की प्रतिज्ञा की तो उसने द्वार तो खोल दिये पर वही प्रवेश स्थल पर खड़े-खड़े उनकी प्रगति को रोककर कहा, "पहले अपने मन मे पड़ी हुई गाठ को खोलो।"

"कौन-सी गाठ?"

"रजत भवन में तुमने किस सुदरी नारी को ठहराया है? वह पुंश्चली है। वैसी ही नारियो के मुहल्ले मे उसे क्यों नही बसाया?"

"वह शरीर नही बेचती। वह गीतवती है। तुम्हारे ही मनोरंजन के लिए आयी है।"

"पर कभी किसीने उसे गाते हुए नही सुना।"

"इस पर्वतीय प्रदेश के शीत ने उसके कंठस्वर को जकड़ लिया है। अपने रोग पर विजय प्राप्त कर वह सबसे पहले अपना गीत तुम्हे ही सुनायेगी।"

"तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। वह गायिका है ही नही। वह एक किसान की कन्या है। तुम तीन सहस्र स्वर्ण दीनारों में उसका मूल्य चुका-

कर यहा लाये हो।"

"कौन कहता है ?"

"सत्य प्रकाश की भांति विश्वव्यापी, बिना शब्दो की सहायता लिए हमें सब कुछ समझा देता है।"

"ये किवदंतियां कई मुखों और कानों से होती हुई चीटी मे हाथी और हाथी से चीटी भी बन जाती हैं। इसलिए समझदार सुनी हुई बात और देखे हुए सत्य में अतर रखता है।"

"अच्छी बात है। मैं समझ गयी महाराज। अब आप पधारिये, किसी दूसरी रानी के कक्ष मे मनोरंजन ढूढिये, जिसने अभी तक इस सत्य को नही पहचाना हो।"

"तुम भूल रही हो। राजधानी के भीतर भी मेरे शत्रुओं की गिनती कम नही है। वे मेरे अंतःपुर के भीतर भी कलह के विष को फैलाकर मेरे मन के टुकड़े कर देना चाहते है। ये समाचार उन्होंने ही उड़ाये है। बिना शोध के किसी भी विचार को सत्य की प्रतिष्ठा दे देना भूल होगी।"

"तो जब तक मैं इस सत्य को शुद्ध नही कर लेती, तब तक आप मुझे छूने के लोभ को परिवर्जित ही रखें!" कहती हुई पटरानी फिर अपने अंत.-पुर के पट बंद कर भीतर चली गयी।

द्वार पर खड़ी प्रतिहारी महाराज की उस पराजय को अनदेखा करने के लिए मुह फेरकर अन्यत्र चली गई। और सहदेव के मन के भीतर की रजकता पर सीमा पर के उन अत्याचारों का परदा उठ गया।

वे अत्याचारी थे सीमा पर के राजौरी राज्य के कुछ लुटेरे, जो अकारण ही सहदेव की ग्राम्य प्रजा की तैयार खेती लूट लेते, गोठ से पशुओं को खोल ले जाते और घर भीतर की नारियों का अपहरण करने मे भी कम नही थे। रात में चोरों की तरह आकर ही नही, वे दिन मे भी शस्त्र का भय दिखाकर यह सब करने में पटु थे। प्रजा का रक्षक सहदेव इसके प्रतिकार के लिए जो भी उपाय करता, वह सफल नही होता था।

पटरानी की भर्त्सना पाकर सहदेव को यह साहस नही हुआ कि वह उसका स्थान ले लेने के लिए कोटारानी को सहमत कर ले। उसके भीतर

ये राजौरी के लुटेरे घुस पड़े। यह सीधे अपने सूने मत्रणा भवन में चला गया।

वहा पर ऊघता हुआ प्रहरी अचकचाकर जाग उठा। उसने सिर झुका, भाला उठाकर घोषणा की, "महाराज महदेव की जय!"

महाराज उदासीनता से जब दोनो हाथो मे मस्तक को लेकर सिहासन पर बैठ चुपचाप रह गये, तो प्रहरी का मन आश्वस्त हुआ कि किसी आघात-स्थिति की आशका नही है।

प्रहरी के मन मे फिर यह शका उठी कि महाराज असमय मंत्रणा-गृह मे अकेले ही क्यो आ धमके? यह जो रूपगर्विता रजत भवन मे लाकर ठहरा दी गयी है, क्या यह उसीका प्रकोप तो नही है? उसने हाथ जोड़कर विनय से पूछा, "महाराज, क्या प्रधानमत्री जी को आपके यहा आगमन की सूचना दी जाये?"

"नही, वे जो कुछ भी युक्त-अयुक्त सोच लेते है, वह उनके टूटे हुए दातो के बीच से ठीक-ठीक अक्षर बनकर मेरे कानों तक नही पहुंचता। रजत भवन मे जो देवी जी आयी है, उनके बारे मे उन्होने क्या अपवाद फैलाया है?"

"हमने तो यही सुना है कि वे बड़ी वीरागना है। महाराज के सेना-पति का स्थान भी ले सकती है। वे जो दूसरे मत्री उनके साथ आये है, क्या उन्हे बुला लाऊ?"

"नही, किसीको भी नही। मैं अपने ही विचारो को अभिमन्त्रित करूगा। तुम भी यहा से दूर हो जाओ और केवल मेरी पुकार की सीमा मे खड़े रहो।"

प्रहरी ने महाराज की आज्ञा का अनुगमन किया और जैसे ही वह ओट मे जाकर खड़ा हुआ कि मत्रणा भवन मे जलने वाली अकेली दीप-शिखा निर्वापित हो गयी।

प्रहरी फिर महाराज के सामने जाकर बोला, "दयानिधान, दीपक तेल की कमी से बुझ गया। दासी को जाकर बता दूं कि वह फिर इसे जागरित करने का प्रबंध करे, ताकि आपके शत्रुओ की भांति इस अंधकार का नाश हो?"

“प्रहरी ! हमारे भीतर भी एक दीपक है, उसके ज्योतित हो जाने पर फिर वाहर के प्रकाश की कोई आवश्यकता नही । यह मिट्टी का दीपक तेल मागता है, पर मेरे भीतर के उजाले को चाहिए मधुरस ! क्या तुम्हें फिर और समझाना पडेगा ?”

“नही महाराज, मैं अभी जाकर परिचारिका को सूचना देता हू ।”

परिचारिका जब पटरानी की दृष्टि-रेखा पर से बिना किसी सकोच के सुरा का पात्र उठाकर ले जाने लगी, तो वह चिल्लाई, “क्यो री ?”

“हा, महाराज के लिए ले जा रही हू । आपके विरह मे क्या उनकी तृपा से भी दड भरा जायेगा ?”

“नही, इस पात्र को भरने के लिए कहती हू ।”

“तब तो यह आपकी विशेप कृपा है !”

पटरानी ने उस पात्र को पूरा ही भरकर दे दिया । परिचारिका बोली, “अत मे क्यो न हो, महारानी का वह रोप केवल दिखाने ही के लिए था । यदि उन्होने इस पात्र को बिलकुल ही रिक्त कर दिया तो ?”

“तभी तो मुझे उनकी चोरी को खोल देने का अवसर मिल जायेगा !”

“क्या राजा भी चोरी करता है ?”

“तेरे इस प्रश्न का समाधान मैं क्यो दू ?”

“क्या मैंने ही आपको सबसे पहले यह सूचना नही दी कि रजत भवन मे एक असम-अनुपम रूपकुमारी पधारी है ?”

“वह राज्य का अतिथि भवन है । बिना महाराज की विशेप अनुज्ञा प्राप्त किये, कोई वहां नही ठहर सकता ।”

“यह तो सभी पर प्रकट है, पर वे वहा ठहरी किसलिए है, इसे कोई नही जानता ।”

“हा, इसीका भेद लेने के लिए, क्या तू मेरा साथ दे सकती है ?”

“वह तो अपनी वृत्ति ही है ।”

“जा, पहले महाराज की आज्ञा का पालन कर, उसीके फलस्वरूप हमारा सयोग होगा ।”

उस अधकार-भरे मत्रणा गृह मे, अपने स्वप्नो की रचना करने के लिए आखें बद करने की आवश्यकता ही नही रह गयी थी । बड़ी देर से वे परि-

चारिका के प्रवेश पर कान बिछाये बैठे थे।

फिर एक आहट पर उठकर वे आगे बढ़ गये। उनके दोनों हाथों की अधीरता से परिचारिका का उत्तरांग छू गया। उसके हाथ का पात्र छलक पड़ा, महाराज की हथेली पर।

परिचारिका चिल्ला उठी, "उई!"

"कोई बात नहीं सुंदरी! अंधकार में यदि कुछ हो भी गया, तो क्या उसकी गिनती अपराध में की जानी चाहिए?" उन्होंने हाथ में छलक पड़ी मदिरा को चाटकर कहा, "यही तो वह स्वादिष्ट पेय है और इसका छलक जाना पात्र की परिपूर्णता का साक्षी है। वह अपने ही मद में भूली महारानी आज कैसे इतनी उदार हो गई?"

सहदेव ने उतावला होकर पात्र मुख से लगा लिया। परिचारिका समझ गयी, कहने लगी, "महाराज, मैं चषक ले आती।"

"पगली, क्या कहीं अमृत का कलश भी जूठा होता है? इसकी कोई घूंट तुझे कभी नहीं मिली। यदि तू इस समय अपने सच्चे-झूठ के भ्रम को निर्वासन दे सकती है, तो ले एक घूंट तू भी इसकी पी ले और इस तथ्य को सोचती ही रह जा कि यह सुरों की संपत्ति देवलोक से इस मर्त्यभूमि में कौन-सा भगीरथ ले आया।" कहते हुए फिर पीने लगा।

दासी बोली, "महाराज, एक ही घूंट में आप अनर्गल सत्य कहने लगे। इतने शीघ्र फिर पी लेंगे, तो फिर न जाने क्या-क्या कहने लगें।"

"सुंदरी, क्या तेरा इतना साहस है कि तू मेरे हाथ पकड़कर मुझे रोक ले, या इस पात्र को ही छीनकर ले जाये? मैं कहता हूं, तू इस पात्र को इतना छलकता हुआ ही भर कर क्यों ले आयी?"

"महाराज, मैं आपको केवल इतना ही स्मरण दिलाती हूं कि अति की मात्रा में अमृत भी विष हो जाता है।"

"तेरा काम मेरी आज्ञा का पालन करना है। उपदेश देने के लिए मेरे पास दूसरे पंडित हैं। क्यों री? कहां है तू, क्या चली गई?"

दासी को यह समझते हुए देर नहीं लगी कि महाराज का विष बढ़ता ही जा रहा था, उनकी चेष्टाओं तथा एकांत पर उस अंधकार ने और भी परदा डाल दिया था। वह अपनी लाज बचाकर वहां से भाग गयी।

सहदेव को जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो वह सुरा-पात्र को ही संबोधित कर कुछ कहने लगा। दासी परदे की ओट में होकर कुछ क्षण सुनती रही। फिर जब महाराज की बोली समझ के पार हो गई, तो वह वहा से चली गयी।

महारानी ने पूछा, "क्यो री, इतनी देर कहा लगायी ?"

"उन्हींका प्रवचन सुनती रही।"

"क्या मन की गांठ खोलकर उन्होंने बता दिया कि वे उस जादूगरनी को मोल लेकर क्या करेंगे ? तू उनके मन के इस भेद को तोड़कर ले आती तो मुझे परिश्रम नही करना पड़ता।"

"सामने होकर नही, मैंने परोक्ष में होकर उनका प्रलाप सुना।"

"तो कह तो सही ! उस प्रलाप मे ही मुझे कोई कुंजी मिल जाये।"

"जब मैंने उनकी पुकार का कोई उत्तर नही दिया तो हाथ के सुरापात्र को ही संबोधित कर बोल उठे'''"

"क्या बोले ?"

" 'क्यों री, तू अपने कपड़े कहां खोल आयी ? क्या यह अंधेरा वस्त्र के अभाव को नही ढक देता। पर तेरी गरदन पर का मस्तक कहां है ? अब देखूं, तू मेरे इस प्रश्न का उत्तर कैसे देती है।' "

"क्या प्रश्न पूछा उन्होंने ?"

"हा, यही कि रजत भवन मे जो सुवर्णा आयी है, उसकी क्या इच्छा है।" कहकर दासी चुप हो गई।

"उसने क्या उत्तर दिया ?"

"सुरापात्र क्या उत्तर देता ? उसके इस मौन पर फिर उन्होंने उसे रिक्त कर दिया और स्वयं ही कहने लगे, 'मैं उसे अपने वाम भाग मे बैठाकर फिर एक और राजतिलक रचाऊगा। सभी रानिया हम दोनों की आरती उतारेंगी। जो मुकर जायेगी, उसे हिमाचल की सर्वोच्च चोटी पर पहुंचा दूगा। जहा उसे खाने को न कोई घास और न ओढ़ने को कोई कपड़ा ही मिलेगा।' "

"अच्छा, उस रांड की यह हिम्मत ! मैं उसके निवास मे आग लगाकर उसकी आकांक्षाओं के साथ उसे भी राख में मिला दूगी।"

"महारानी जी, यह तो तभी सम्भव होता, जब यह भवन महाभारत की तरह लाख का ही बना होता। उसमें तो कहीं लकड़ी भी नहीं लगी है। ईंट, चूना, पत्थर का निर्माण, द्वार और छत सब का सब चांदी का। फिर अपराध तो यह महाराज का भी हो सकता है, उस सुंदरी का ही क्यों?"

"फिर क्या तू मेरे साथ उसके पास तक चलने को तैयार है? हम जाकर उससे पूछेंगी, वह यहां किस मतलब से आई है? इससे अच्छा अवसर हमें दूसरा मिल भी न सकेगा। बाहर रात है और भीतर महाराज मद के वश में।"

"और मैं निरंतर आपकी अनुचर्या में।"

"चल, फिर मेरे कक्ष में ताला लगा दे! नहीं, पालकी नहीं मंगायी जायेगी।"

"इसी रूप-रेखा में? क्या कोई अन्य वेश नहीं धरा जायगा?"

"नहीं, अपनी इसी स्वाभाविक वेश-भूषा में! केवल एक पूजा की थाली वस्त्र के आच्छादान में साथ लेनी पड़ेगी। हम माहेश्वरी देवी को साध्य आरती में जा रहे हैं। जा शीघ्रता कर, नहीं तो फिर बहाने का सत्य कैसे अखंडित रहेगा?"

यह सब करते क्या देर लगती? वे दोनों कुछ ही समय में रजत भवन के द्वार पर जाकर खड़ी हो गयीं। जो प्रतिहारी उसकी रक्षा में खड़ी थी, उसने तुरत ही पटरानी को पहचानकर मस्तक विनत किया, "चल-कर ही पधारी हैं, क्या आज्ञा है?"

"देवी के मंदिर में क्या अपने अहंकार का प्रदर्शन करना है? कहां है, जो इस भवन में ठहराई गयी है?"

"उनको ही क्या आप इतनी प्रतिष्ठा दे रही हैं? यहीं पर बुला दूं उन्हें?"

"यदि तू मेरे मन के सभी आक्षेप मिटा सकती है, तो मैं क्यों नहीं यहीं से लौट जाऊं?"

"मैं इतनी सर्वज्ञा तो न हो सकूंगी, फिर भी उन्हें सुनूं तो सही।"

"यह कौन है, कहां से, यहां क्यों आयी है?"

"इसका भेद जानने की हमारी चेष्टा प्रतिबंधित है। वे भी हमपर कभी किसी भाषा में खुलती नही है।"

"महाराज क्या रात को भी यहा आते है?"

प्रतिहारी इस प्रश्न पर गभीरता से विचार करने लगी।

महारानी बोली, "क्यो तू सोच-विचार मे पड गयी? हा-हा, मैने उनके लिए अपने भवन ही नही, सारे अत पुर के द्वार बद करा दिये है। राजसभा मे चाहे उनका जो भी विधान प्रसारित हो, अत पुर की विधायिका मेरे सिवा दूसरी कौन है!"

'नही, महाराज रात को यहा कभी नही आते। दिन मे भी अकेले कभी नही।"

"दिन मे कौन आता है उनके साथ?"

"रामचद्र नाम का एक मुखिया।"

महारानी ने बडी तीखी दृष्टि मे प्रतिहारी को देखा, "कौन है वह?"

"सुना है, कुछ दिनों से राजसभा मे वह अंतिम पक्ति मे बैठने वाला, मन्त्रियों की सीमा तक बढ गया। और एक दिन उसने बूढे प्रधानमत्री की लाठी छीनकर कहा, 'यदि आप इस लाठी को फेक दें···।'"

महारानी ने उसके वाक्य के बीच ही मे कहा, "बेकार बातें न कर! चल, कहा है वह? जब तक मैं उसे देख-सुनकर समझ न लू, क्यो उसके लिए किसी विशेषण का उपयोग करू?"

महारानी तीव्र वेग से दो देहरिया पार कर तीसरे कक्ष मे पहुची, तो उसका भी द्वार खुला था। बाहर जो दासी खड़ी थी, पटरानी को पहचानकर उसने मार्ग छोड़ दिया। द्वार पर पड़ा परदा उठाकर जैसे ही वह कक्ष मे पहुंची, तो उसने देखा, एक सुदरी, चमकती हुई कटार के फलक पर अपने मुख का प्रतिबिंब देख रही है।

महारानी ने विस्मित होकर मानो दीवारो से पूछा, "क्यो, यहा का दर्पण कहा गया?"

कटार की चमक को तुरत ही उसके कोप में खोसकर उस रूपवती ने अपना मुख महारानी की ओर किया, "नही, मैं दर्पण मे मुख देखना अपने जन्म का उपहास समझती हूं। मैंने यहा के दर्पण को भी ऊपर छत

पर के कबाड़खाने में रखवा दिया है।"

उसके रूप के तेज से मानो महारानी की आंखें चौंधिया उठीं। वह केवल इतना ही कह सकी, "क्यों ?"

"रूप क्या दर्पण की दया में है ? वह तो प्रकृति का दान है।"

"फिर तुम उस कटार की चमक में किसका समर्थन मांग रही थी ?"

"कटार नहीं, उसका नाम उरग है।"

"उरग तो छाती के बल चलने वाले सर्प को कहते हैं।"

"या मेरे शत्रुओं की छाती में घुस जाने वाले उस मृत्यु के दंश का नाम है।" वह बड़ी अचित्य हंसी के साथ बोली, "पर बिना द्वार पर की दासियों से अपना परिचय बुलवाये, तुम मेरी गोपनीयता के भीतर टूट पड़ी, यह तुम्हारे किसी पदाधिकार की सूचना है। और क्या यह तुम्हारे वस्त्रालंकारों की चमक तथा भाव-गति की ऐंठ से प्रकट नहीं होता ?"

महारानी ने केवल सिर हिलाकर नाक के उच्चारण में कहा, "हूंऽऽ।"

"जब तुम अपने ही बल पर इस कक्ष में चली आयी हो तो तुम्हारा स्वागत करने वाली मैं होती कौन हूं ? तुम जहां भी बैठना चाहो, वहां चौकिया भी है और मेरी शय्या भी, तो वह तुम्हें अस्वीकार क्यों करे ?"

पर वह कहीं भी नहीं बैठी, खड़ी ही खड़ी कुछ रूखेपन से बोली, "तुम कौन हो ?"

"यह मैं भी स्वयं ही नहीं जानती हूं। ऊंची आकांक्षाओं में खिंचती चली जाती हुई एक नारी !"

"तुम्हें किसने बेचा ?"

"मेरे दुर्भाग्य ने !"

"महाराज ने कितने में मोल लिया तुम्हें ?"

"उनका धनागार रिक्त है ! मंत्रियों में स्पर्धा है, अपने-अपने स्वार्थ के लिए। कर्मचारियों को समय पर वेतन नहीं मिलता, किसान अरक्षित हैं। सीमा पार से लुटेरे आकर प्रजा को लूट ले जाते हैं। सैनिकों का उन-पर कुछ भी प्रभाव नहीं।"

"फिर तुम क्यों आयी हो यहां ?"

"मैं इस स्वर्गोपम देश की दशा का सुधार करूंगी। मैं कृषकों की रक्षा करूंगी, सैनिकों में शक्ति और कर्मचारियों में सेवा की भावना जगाऊंगी और मंत्रियों का कलह दूर करूंगी।"

"यह सब क्या उच्चे स्वर से पुकार देने पर हो जायेगा?"

"नहीं, मैं कश्मीर की रानी बनूंगी।"

"वह तुम्हारा राजा कौन है? जो गद्दी पर बैठा है, वह क्लीव है! उसके धोखे में मत पड़ना! उससे विवाह कर पछताओगी।"

"मेरा पति यह है।"

"कौन है?"

कोटारानी ने कोष में से फिर कटार निकालकर हवा में चमकाई, "यह उरग, इसकी जीभ दोनों ओर काटती है।"

महाराज सहदेव के मन में ही नहीं, उसकी राजसभा में भी जब रामचंद्र विशेष स्थान अधिकृत करने लगा, तब तो उसे राज्य की दशा के सुधर जाने की आशा बंधने लगी। दोनों एक-दूसरे के निष्कपट भाव से बहुत निकट हो गये।

पहले रामचंद्र को भी रजत भवन के ही एक प्रकोष्ठ में जगह दे दी गयी थी। उसके खान-पान का प्रबंध भी कोटारानी की ही रसोई में था।

एक दिन सहदेव ने उससे पूछा, "तुम कोटारानी के कितने निकट के चाचा हो?"

और रामचंद्र के मुख से निकल ही तो गया, "दूर का भी तो नहीं।"

"फिर इस संबंध की मान्यता?"

"मान ही लेने से। जिस स्थिति और आवश्यकता में भगवान पहुंचा दे।"

और तभी से सहदेव के मन में रजत भवन में रामचंद्र की स्थिति युक्तियुक्त नहीं जान पड़ी, जिसमें कोटारानी ठहरी थी। जहां रामचंद्र

राज-काज में उसका दाहिना हाथ बन रहा था, वहां उसने उसे रूपवती का पाणि-प्रार्थी अपना प्रतिद्वंद्वी समझ लिया।

शीघ्र ही रामचंद्र को एक दूसरे भवन में प्रतिष्ठा दे दी गयी। उसके भोजन का प्रबंध बिलकुल अलग ही कर दिया गया।

सहदेव ने उससे कहा, "क्योंकि अब तुम्हारे अधिकार में राज्य के अनेक प्रश्न आ गये, इससे तुम्हारे मित्रों के साथ-साथ तुम्हारे शत्रु भी बढ गये। राज्यतंत्र बड़ा कूटजाल है। कहीं कोई तुम्हारे भोजन में विष न मिला दे, इसलिए तुम्हारे रहन-सहन का प्रबंध किसीसे संयुक्त नहीं रहना चाहिए।"

रामचंद्र इसके भीतरी मर्म को समझ गया। कोटारानी को बहुत ऊंचे आकाश की शशिकला अनुमानित कर वह उसकी ओर से हाथ खींच ही चुका था। अतः उसकी सन्निधि से कटकर अलग भवन में जाने में उसे कोई कष्ट न था।

उसने इसपर कहा, "कोटारानी संभवतः अब एकांत में ठीक मार्ग पकड़ लेंगी।"

"क्योंकि तुम्हारे सारे अनुरोधों की उन्होंने कोई गिनती ही नहीं की। अपना कोई विचार भी नहीं प्रकट किया?"

"कभी-कभी तो कहती है कि विवाह ही नहीं करूंगी।"

"यह अव्यावहारिक संकल्प है। सभीको अपनी ओर अंगुलियां उठाने का अवसर देना है।"

"कहती है, विवाह करूंगी तो खड्ग ही से। उसीसे अपने शत्रुओं को पराजित कर बिना राजा के देश की रानी बनूंगी।"

सहदेव भीतर ही भीतर कांप उठा, "ऐसा देश, बिना सेना के केवल उस खड्ग से क्या अकेले ही जीत लिया जा सकेगा?"

"मेरी इस आपत्ति का उन्होंने निराकरण कर दिया।"

"कैसे?"

"कहने लगी, 'जब मैं अपने अंग-प्रत्यंग में दुर्गा के तेज का अवतरण कर लूंगी, तब मेरा सामना करने वाले सम्मोहन में पड़कर मेरे अनुगामी हो जावेंगे।'"

सहदेव के मन में दूसरी विचारधारा आ गयी, "तब क्यों न उन्हें यह सुयोग दे दिया जाये।"

"मैं नहीं समझा महाराज।"

"हमारी सीमा पर जो राजौरी का राज्य है, उसमें रहने वाली एक आवारा जाति, हमारे गावों को अरक्षित पाकर उनकी धन-सपत्ति और खेती-पाती लूट ले जाती है। कोटारानी का लक्ष्य हमारे राज्य को सुव्यवस्थित करना है। यदि वे उनका दमन करने को सन्नद्ध हो जायें तो क्या यही उनके शौर्य की परीक्षा न होगी? हम अपनी सारी सेना उनके साथ कर देंगे।"

रामचंद्र बड़ी विनम्रता से बोला, "वे अंततः एक अबला ही तो ठहरीं। प्रकोष्ठ में बैठकर शब्दों की विजय पा लेना सरल है। रणक्षेत्र का रंग ही दूसरा है। उनकी तो कैसे कहूं, यह मेरी परीक्षा का अवसर है, महाराज।"

"तुम्हें विजय प्राप्त हो रामचंद्र, यही मेरी मनोकामना है। यदि हमारा देश इन्हीं लुटेरों से मुक्त हो जाये तो फिर उसकी अन्य दुरवस्थाएं भी क्रमश: दूर हो जायेंगी। फिर कश्मीर की समृद्धि में संशय ही क्या रहेगा? और कोटारानी ऐसे सुसंचालित देश की महारानी बन जाने के लिए भी क्या मेरी ओर अपना हाथ न बढ़ायेंगी?"

रामचंद्र का उत्साह बढ़ गया और वह उसी क्षण से उस अभियान की तैयारी में लग गया।

होंठों से उत्साह बोल देना बड़ी सीधी-सी बात है, क्या रक्त की नाड़ियों में उसे दौड़ा देना आसान है? लकड़ी की तलवारों को लेकर रामचंद्र ने अखरोट, अनार, आड़ू सेब के पेड़ों पर चढ़ाई की थी, क्या हथेली पर जान लिए राजौरी के लुटेरों का सामन कर लेना आसाना था?

रामचंद्र के सेनापतित्व में चलने के लिए सैन्य-संग्रह में सहदेव ने एक चाल खेली। गांवों में यह समाचार फैला दिया गया कि साक्षात् दुर्गा अवतरित होकर राजधानी में पधारी हैं। अब उनके अचूक खड्ग के प्रहार से कश्मीर की निरीह जनता लुटेरों के आतंक से मुक्त हो जायेगी। किसान

निर्भय होकर खेतो में अन्न और वृक्षों पर फलो का उत्पादन कर सकेगा। शिल्पी निश्चित तन्मयता से अपनी कला को रूपायित कर सकेगा। व्यवसायी नि शक होकर अपने माल का लेन-देन कर लेगा और यात्री जहा भी जी चाहेगा, वहा आ-जा सकेगा।

कोटारानी के अभूतपूर्व सौंदर्य और रहस्यमय निवास के समाचार तो श्रीनगर मे दूर-दूर तक फैल ही गये थे, लोगो मे उसे देखने का कौतूहल जाग उठा।

किसी वज्रबाहु का अधिनायकत्व न पाकर जिन वीरों का शौर्य, दुष्टो की अति सहन कर लेने का अभ्यासी हो गया था, उनके अंग-प्रत्यंग मे एक नई बिजली कौंध उठी। उन्होंने अपनी जन्मभूमि को आततायी के अत्याचार से मुक्त करने की शपथ के साथ अपना शस्त्र उठा लिया और बालू से माजकर उसकी काई दूर करने लगे।

अनेकों ने उस देवी के अधिनायकत्व में अपने पौरुष की सार्थकता समझी। बहुतो को सेना मे भरती होकर वेतन पाने का का लालच हो उठा। कुछ ने देश का क्लेश मिटाने को सेना मे भरती हो जाना एक धर्म-कर्त्तव्य समझा।

सहदेव की नियमित सेना, जो बिना किसी अभियान और वेतन न मिलने के कारण उदासीन होकर बैठी थी, उसका देय चुका दिया गया और वह भी अपने अस्त्र-शस्त्र, कवच-कृपाण, रथ-वाहन संजोने लगी।

राज्य की सभी दिशाओं से, नियत समय पर जब सारी सेना मैदान में एकत्र हुई तो महाराज सहदेव ने ऊचे चबूतरे पर चढकर सेना को सबोधित किया, "मेरे वीरपुंगवों, धन-मान या किसी पदवी के लालच को लेकर तुम यहां नही आये हो। केवल देश के द्रोही शत्रुओ से निरीह जनता की रक्षा करने के लिए ही तुम अपने प्राणो का मोह त्याग कर यहां एकत्र हुए हो। तुम्हारे इस बलिदान के सहायक स्वय भगवान हैं। तुम इस बात की कुछ भी चिंता न करो कि जो देवी उन्होंने तुम्हारी *भावना को एक कर्म में नियुक्त करने को भेजी है, अभी अपने प्रतिनिधित्व* के लिए उस देवी ने इस महापुरुष को भेजा है।"

सहदेव ने निकट ही घोड़े पर सवार एक व्यक्ति को निर्दिष्ट कर

कहा, "इनका नाम रामचंद्र है। इन्हें आज के अभियान का सेनापति पद उन्हीं देवी के द्वारा प्रदत्त हुआ है। जिस प्रकार राक्षसों के त्रास से भारत की भूमि निस्तारित हुई, उसी तरह ये रामचंद्र हमारे भारत-मुकुट इस कश्मीर के शत्रुओं का मूलोच्छेदन करेंगे। देवी जी ने इस खड्ग के साथ अपना सारा तेज-बल और आशीर्वाद इनके लिए भेजा है।"

रामचंद्र ने बड़े आदरपूर्वक वह खड्ग सहदेव के हाथों से ग्रहण किया। फिर महाराज ने जयघोष किया, "कश्मीर की दुर्गा भवानी की जय !"

फिर सारी सेना ने मिलकर दुहराया, "दुर्गा भवानी की जय !"

वीरों को उत्तेजना देने वाले बाजे बज उठे। उनकी भावना को जगाने के लिए कड़खे गाये गये। अंत में रामचंद्र ने सबको शांत कर नंगी तलवार हवा में चमकाते हुए गर्जना की, "भाइयो, हम किसीकी भूमि का अपहरण करने को युद्ध में नहीं जा रहे हैं, न ही किसीकी धन-संपत्ति हरण करने को। हमारी यह रण-यात्रा अपनी रक्षा के लिए है। वे डाकू-लुटेरे हमारी धन-धरती लूटकर ले जायें, यह भी हमने सहन कर लिया। आज वे हमारी बहू-बेटियों का अपहरण कर ले जा रहे हैं। यह मर्माघात असह्य है। चलो, देश के गौरव की रक्षा करने में प्राण भी चले जायें तो कुछ चिंता नहीं।"

रामचंद्र घोड़ा दौड़ाते हुए आगे-आगे चला। फिर रण के बाजे बज उठे और सारी सेना ने फिर "दुर्गा की जय" का घोष किया और वे दुर्ग की सीमा से बाहर चले गये।

कश्मीर की लज्जा की रक्षा करने के लिए वे सभी एकमन, एक-प्राण, एकलक्ष्य, एकदिशा होकर उस गांव की ओर चले जा रहे थे, जहां से नारियों का समूह अपहृत किया जा रहा था।

अंततः वे उस गांव में पहुंच गये, जिसके विघटित चित्र ने उन्हें यह बोध दे दिया कि उसीकी दुर्दशा उन आततायियों ने की है। गांव के मकान टूटे, झोपड़िया जली और उनके निवासी मार खाए हुए, रोते-चिल्लाते पड़े थे।

एक पीड़ित स्वर में चिल्ला रहा था, "लुटेरे गांव की तमाम सुंदरी

नारियों का अपहरण कर ले गये। किसीको बांधकर, किसीको बाहुपाश में जकड़ घोड़ों पर लादकर चल दिये।"

"और उनके इस अत्याचार के गीत गाना ही तुम्हारा पराक्रम रह गया?" रामचंद्र ने उसका उपालंभ सुनकर कहा।

"साग काटने की छुरी से हम क्या सामना कर सकते उनका?" दूसरे ने रामचद्र की बात काटते हुए कहा।

"सामना शस्त्र से नही, साहस से किया जाता है। उन्हीके हथियार छीनकर क्या तुम उन्हें परास्त नही कर सकते थे। पर छोड़ो इस वाद-विवाद में समय नष्ट नही करना है। हमें महाराज सहदेव ने तुम्हारी रक्षा को भेजा है। लुटेरे किस मार्ग से गये?"

"मार्ग की मिट्टी मे भागते हुए घोड़ों की टापों ने उनकी दिशा को स्पष्ट किया है।"

रामचद्र फिर बिना कोई वाक्य खोए अपने अनुचरों के साथ उधर ही को दौड़ गया।

कही आकाश मे उड़ती धूल, कही अपहृत नारियों के क्रंदन, कही मार्ग पर पड़े हुए चिह्नों से वे घटे-भर में अपनी दौड़ मे ही सफल हो गये।

रामचद्र ने एक घुड़सवार को देख लिया। वह घोड़े की लगाम मुह में लेकर उसे सचालित कर रहा था। दोनो हाथो से उसने अपहृता नारी को अपनी गोद मे जकड़ रखा था। उस नारी में अदम्य साहस था। वह अपनी छटपटाहट मे न थकी ही थी, न निराश हुई थी। रामचंद्र ने उसके पास पहुचने के लिए घोड़े की चाल तेज करने को एड़ लगायी।

उसने दूर ही से जो कुछ देखा, उसे देखकर वह स्तभित रह गया। उसे क्या कहे वह? भगवान की महिमा या अबला की विषम शक्ति!

उस सुदरी ने अपनी कमर पर से उस नराधम का बाहुपाश, उसकी ही कमर से कटार निकालकर काट डाला। वह पीड़ा से छटपटाया। उस देवी ने उसकी उलट गयी पीठ पर फिर कटार का दूसरा आघात कर उसे भूमि पर फेंक दिया।

उसके मुह से छूटी हुई घोड़े की रास देवी ने अपने हाथ में ले ली ली, और दूसरे हाथ से वह रक्त-रंगी कटार आकाश में नचाती हुई बोली,

"उठो-जागो, और इन नराधमों के पाप को अपने तेज से पराजित करो।"

उसकी इस विद्युत्-भरी वाणी से सभी अपहृता नारियों की आत्मा जाग उठी। और उन लुटेरों ने जब अपने नेता को रक्त-रंजित हो भूमि पर लुंठित देखा, तो उनका साहस छूट गया। अनेक नारियों ने मुक्ति प्राप्त कर ली।

यह दृश्य देखकर शेष महिलाओं की विमुक्ति के लिए रामचंद्र ने दौड़ते हुए घोड़े पर अपना खड्ग चमकाते हुए साथियों से कहा, "यही है वह दुर्गा, इसका जयघोष करो।"

सबने अपने सेनापति की बात पर विश्वास किया और समवेत स्वर में बोले, "महामाया दुर्गा की जय!"

रामचंद्र की सेना के आक्रमण से वे लुटेरे अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। अब तो उस अभियान का लक्ष्य केवल उन नारियों का निस्तार ही नहीं रहा, उन्होंने उनका पीछा किया और अनेक को घायल कर मृत्यु की गोद मे पहुंचा दिया, और शेष भागकर उस भूमि को ही सदैव के लिए छोड़ गये।

बहुत बड़ी विजय पाकर रामचंद्र लौटा। भाग्य उसका सहायक हो गया। केवल नारियों का निस्तारण ही नहीं, राजौरी की भूमि भी उन दुष्टों की छाया से मुक्त कर कश्मीर राज्य में मिला दी गयी।

अब तो रामचंद्र का यश ग्रामवासियों और नागरिकों के बीच समान रूप से फैल गया। महाराज और दूसरे मंत्रियों ने भी उसकी कीर्ति के गीत गाना आरंभ किया। उसे बड़ी आसानी से सहकारी सेनापति का पद प्राप्त हो गया। कश्मीर की आधी से अधिक सेना उसके अधीन कर दी गयी।

सहदेव ने रामचंद्र की पदोन्नति कोटारानी को अपने सिंहासन में प्राप्त करने के लिए की थी। और वह अपहृत नारियों के निस्तार का भी कारण बन गया तथा कश्मीर की सीमा-वृद्धि में भी उसका नाम लिख जाने से वह उसको और भी विशेष पद देने के पक्ष में हो गया।

अवसर निकालकर उसने एक दिन रामचंद्र से कहा, "रामचंद्र, यह निश्चय ही तुम्हारे बाहुबल की परीक्षा हो गयी, पर अभी तक तुम अपने

वुद्धिवल की सफलता नही दिखा सके हो।"

रामचद्र तुरंत ही महाराज सहदेव के मतलव को समझकर बोला, "महाराज, मैं जब भी जाकर उनसे भेंट करता हूं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरी बात ही नही करता।"

सहदेव बिलकुल अनबूझ होकर कहने लगा, "कौन-सी बात सेनापति?"

"कि उनको कश्मीर की महारानी बन जाने में क्या आपत्ति है?"

"फिर वे क्या उत्तर देती हैं?"

"यही कि वे पटरानी बनने के लिए ही जन्मी हैं।"

"और मेरी पटरानी ने ही उनका मार्ग रोक दिया है। पर तुम्हें ज्ञात है रामचद्र, वे अभी तक हमारे उत्तराधिकारी को जन्म नही दे सकी है। फिर क्यों नही वे किसी योग्यतम महिला के लिए अपना स्थान छोड देती?"

रामचद्र चुप रह गया। उसके कानों में कोटारानी से कहे गये पटरानी के वाक्य प्रतिध्वनित हो उठे कि कश्मीर का राजा क्लीब है। वह अपने अभाव का उत्तरदाता स्वय ही है।

सहदेव बोला, "क्यो, तुम किस दुविधा में पड़ गये? क्या मैं झूठ कहता हू? मैंने अपार धनराशि पटरानी के उपचार के लिए व्यय की है। कोई फल नही हुआ। अनेक देवी-देवताओ की पूजा की है। उन्होंने भी बड़े-बड़े व्रत-उपवास किये है। कोई लाभ नही हुआ है। कितने ही वर्षों से मैं सूर्य की पूजा नियमित रूप से कर रहा हू।"

रामचद्र के मन मे वह दिन खुल पड़ा, जब राजा की पूजा के समय पहरे को तोड़कर कोटारानी मार्त्तंड के मदिर मे घुस गयी थी और उसी समय सहदेव के मन में भी वही स्मृति जाग उठी। वह कहने लगा, "हा, मैं कैसे कहूं कि मेरी मार्त्तंड की पाच वर्ष की पूजा व्यर्थ गयी? रामचद्र, तुम भी तो वही उपस्थित थे, क्या उसी पूजा के फलस्वरूप यह सुदरी मुझे वहा प्राप्त नही हुई? मैं क्यो नही मार्त्तंड के मंदिर में उनके दर्शन को देवता का वरदान ही मानू? क्या यह कोई अतिशयोक्ति है?"

"नही महाराज, इसका एक-एक अक्षर अकाट्य सत्य है।"

"कश्मीर राज्य के उत्तराधिकारी की प्रसूता वही है, जाओ उन्हे इस तथ्य से अवगत कराओ और अपने पौरुष का बखान करो कि तुमने कश्मीर के चिरकाल के शत्रुओं को विनष्ट कर, उनकी भूमि राज्य में मिलाकर, सुख-शांति का विस्तार किया है। उनमे जाकर यह भी कहो कि राज्य में जो-जो भी सुधार अपेक्षित है, शीघ्र ही उनकी पूर्ति की जायेगी। तथा उनके राजमहिषी हो जाने पर वे जो भी आज्ञाएं देगी उनकी पूर्ति में कोई भी कसर नही रखी जायेगी।"

रामचंद्र ने सहदेव को पूरा भरोसा दिया, "महाराज, कोटारानी आप ही के अंत:पुर के लिए यहा आयी है, इसमें कोई संदेह नहीं है, पर कुछ धैर्य रखना पड़ेगा। शीघ्रता में काम बिगड़ जाते है।"

सहदेव रामचंद्र की बातो में विश्वास करने लगा। वैसे वह अपने पूर्ववर्ती राजाओ से कुछ बुरा नही था। कुछ आलसी था अवश्य। क्या उसका आलस्य उसके डरपोक होने का परिणाम तो नही था? अब सेनापति रामचद्र को पाकर वह अपनी वीरता का दम भरने लग गया था।

रामचंद्र वीर भी था और मेधावी भी। महाराज ने उसे बहुत-से अधिकार दे दिये कि वह कोटारानी को उसके लिए राजी कर सके। वह भी पूरी शक्ति से इसकी चेष्टा करने लगा।

सन् १३१२ ई० में सुआत की घाटी मे शाहमीर नामक एक सरदार-कुल का वीर युवक सत्ता के संघर्ष में वहा अपने प्रतिस्पर्धियों से हार खा गया। उसे अपनी भूमि छोड़कर शरणार्थी हो जाना पड़ा। वह अपने कुटुंब के कुछ लोगों तथा स्वामिभक्त सेवकों के साथ जीविका की खोज में कश्मीर चला आया।

श्रीनगर में प्रवेश कर उसने झेलम के किनारे एकांत मे अपने खेमे खड़े किये। जो कुछ सोना-चांदी साथ में लाया था, उससे उसने अपने आरंभिक दिन काटे और अब भविष्य की सुख-सुविधा पाने के लिए युक्तियां सोचने लगा।

उस युवक शाहमीर की पत्नी अच्छे खानदान की, बड़े [illegible] की नारी थी। अपने साथ वह बहुत-सा सोना लेकर आयी थी।

तो उसने नित्य के खर्च के लिए सभालकर रखे थे। शेष के लिए उसके मन मे बड़ी चिंताएं भर गयी।

एक दिन शाहमीर जब भोजन के लिए शिकार करने वन मे गया हुआ था, उसके तंबू में उसकी पत्नी अपने एक छोटे देवर के साथ थी। वहा उनकी रक्षा के लिए एक दासी नियुक्त थी। उनके कुछ और सगे-संबंधी कुछ दूरी पर के डेरों में रहते थे। और उनके पास ही शाहमीर के अन्य शरीर-रक्षक और अनुचरों के खेमे थे।

उस दिन शाहमीर की बेगम ने अपने बहुमूल्य आभूषण एक हांडी में बंद कर लिए और उन्हे चोर-चकारो के भय से बचाने के लिए कही भूमि के भीतर गाड देने का विचार करने लगी। खेमे के बाहर कनात बांधकर एक आगन घेर लिया गया था। वहा रसोई में छोटा-मोटा काम तो दासी ही करती थी पर खाना दोनो जून बेगम ही बनाती थी।

उसने दासी को जगल से सूखी लकडी ले आने के लिए भेज दिया। देवर बसी लेकर झेलम मे मछली मारने चला गया। आंगन मे जहा वह एक पुराना कालीन बिछाकर बैठा करती थी, वहां उसने जल्दी-जल्दी में एक हाथ गड्ढा खोद उसमे वह हांडी दबा दी। पति, दासी और देवर के लौट आने से पहले ही सोने की उस समाधि के ऊपर वह फीका कालीन बिछाकर बैठ गयी और चावल बीनने लगी।

फिर कुछ दिन बीत गये। अब तो उस समाधि के ऊपर दूब निकल आयी थी। शाहमीर के अन्य साथी इधर-उधर खेतो-खलिहानों और वन-उपवनो तथा नगर-उपनगरो में स्वयं को खटाकर अपनी पालना कर ही ले रहे थे। वह राजघराने का था, उससे यह सब कुछ नही हो सकता था, न ही उसकी बेगम किसीका चौका-बर्तन कर लकडी-पानी ढो सकती थी।

जब बाहर निकली हुई सारी धन-सपत्ति शेष हो गयी तो एक दिन उसने बेगम से कहा, "बानो, चोरो के भय से तुमने जो जेवर छिपा दिये है, उन्हें अब निकालना ही पड गया।"

"उनसे भी कितने दिन चलेगा ?" हंसकर वह बोली।

"चलेगा, चलेगा बानो ! कल रात मैंने सपने में किसीको बडी जोर

से पुकारते सुना। मेरी नींद टूट गयी, फिर भी मैं उस आवाज को सुनता ही रह गया।" कहते-कहते शाहमीर का मुखमंडल ज्योति से उद्भासित हो उठा! चरम आनंद से वह एक क्षण के लिए तो निरुद्ध रह गया।

अपने सुदिनों के लौट आने की उत्सुकता में उसने पति का हाथ पकड़ लिया, "क्या-क्या? तुमने क्या देखा और सुना?"

"जो राज्य मैंने अपनी जन्मभूमि में खो दिया, वही इस कर्मभूमि में मुझे मिल जायेगा।"

पर बानो के मुखमंडल पर पति के इन आशापूर्ण शब्दों ने कोई प्रकाश नहीं दिखाया। वह कुछ और कहना चाहता था कि दूरी पर घोड़ों की टापें सुनाई पड़ गयीं, "कश्मीर के राजा या उसके अनुचरों को अब यहां पर हमारी छावनी खटकने लगी? जिस राजकर्मचारी को मैंने तुम्हारे गले का सबसे बड़ा हार उपहार में दिया था, क्या उसकी कीमत चुक गयी?"

शाहमीर के यह कहते-कहते खेमे का परदा हटाकर राजा का एक सिपाही वहां घुस आया। हकबकाकर बानो मुंह फेरकर खड़ी हो गयी और अपना बुरका ढूंढने लगी।

शाहमीर ने सिपाही का सामना करते हुए कहा, "शाह जी, आपका बिना कोई खटका दिये ही क्या हमारे जनानखाने में घुस आना वाजिब था? अगर मैं भी यहां न होता तो, यह बेचारी अकेली आपको क्या समझती?"

"हुंह! अब तुम ऐसा कहते हो? राज की इस भूमि पर अपनी जागीर जमा चुके हो क्या?"

"दीवान जी, ऐसा न कहिये, कोतवाल साहब को हम नजराना दे चुके हैं।"

"नजराना देकर क्या सालाना भूमिकर से छूट जाओगे?"

"साल पूरा होने पर हम फिर आपकी सेवा करेंगे?"

सिपाही कुछ संतुष्ट होकर बोला, "अच्छा-अच्छा, अभी तुम इस मैदान पर से अपना डेरा-डंडा उखाड़कर ऊपर किसी पहाड़ी पर चले जाओ। यहां महाराज एक यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे।"

शाहमीर गहरे सोच-विचार में पड़ गया, "पर…।"

"तुम कुछ दिनों की छूट मांगते हो क्या? वह नहीं मिलेगी। आज ही, अभी हटाओ सब।"

"सरकार, अभी यह कैसे हो सकता है? कहीं कोई दरी-कंबल होता तो मैं उसे गोलकर अभी चल देता।"

"अधिक बातें न बनाओ। हमें सब कुछ ज्ञात है। वह जो चिनार के पेड़ों के नीचे छावनी पड़ी है, उसमें रहनेवाले लोग जो खेतों, मकानों और बाजारों में मेहनत-मजूरी करते है, वे सब तुम्हारे ही लोग है। बुलाओ उन्हे, वे यहां से तुम्हारा डेरा उखाड़कर वही कहीं अपने निकट जमा देंगे।"

"अजी, वे हमारे साथी जब थे तब थे। जब से हमें गिन्नार के जंगल मे डाकुओं ने लूट लिया, हमारे व्यापार का सारा जर-जवाहरात, माल-असबाब, रुपया-पैसा कुछ भी नही छोड़ा, जब हम बिलकुल नंग-धड़ग रह गये तो फिर कौन हमारा अपना रहा?"

"नहीं, तुम झूठ मत बोलो। हमने तो सुना है कि तुम किसी राजसी वंश के हो और अपना राज बढाने के लालच से यहां जासूसी करने आये हो।"

"तो क्या राज कोई बिना हथियारों के ही जीत लेता है? देख लो, हमारी तलाशी ले लो।"

"हमे तुम्हारे साथ अधिक बहस करने का आदेश नही दिया गया है। आज तीज है, पूर्णिमा को यहां, नही उससे भी कुछ पहले, यज्ञ-मडप तैयार हो जाना है। अगर तुम्हें यह टाट-टप्पर अपने हाथ से दूर ले जाना स्वीकार नही है, तो हम अभी राज के मजूरों को यहा लाकर सब उखड़वा देंगे।"

यानो बुरका पहनकर वहा आ गयी और बड़े दयनीय शब्दों मे बोली, "हम कहां जायें?"

"यहा से दूर, उधर पहाड़ों की ओट मे चले जाओ, जहां से न तुम यहां से किसीको दिखाई दे सको, न तुम ही यहां पर अपनी नजर डाल सको।"

यानो रोने लगी। उसे सबसे बड़ी चिंता उस भूमिगत जेवरों की हो

उनका नेता घबराकर बोला, "तंबू तो हम अभी उखाड़कर रख देंगे पर इनके साथ हम कहीं जावेंगे नहीं।"

"क्यों नहीं जाओगे? यह राजा की आज्ञा है!"

"हमें इस महाकाली से डर लगता है।"

सिपाही ने हंसकर शाहमीर से कहा, "देखो भाई, अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा काम सरकारी खर्च पर ही हो जाये तो तुम्हें इन मजूरों का वहम दूर करना ही पड़ेगा।"

"कैसा वहम?"

"बात ऐसी है, मुझे तो तुम्हारे परदे का रिवाज मालूम है, मगर ये बेचारे कुछ जानते नहीं। इस काले खोल के भीतर कोई हौआ समझे बैठे हैं। इसलिए तुम एक क्षण के लिए इनका मुंह खोलकर दिखा दो।"

बानो को बड़ी कठिनाई से शाहमीर ने राजी किया और अपने ही हाथों से उसका मुंह खोलकर उसने मजूरों को दिखा दिया।

मजूरों का नेता तो मान गया, पर उसके साथी बोले, "नहीं, इसके पैर भी दिखाने पड़ेंगे क्योंकि चुड़ैलें परी और अप्सराओं का रूप भी रख लेती हैं, मगर अपने पैरों को सीधा नहीं कर सकतीं।"

बानो जब अपना मुंह दिखा चुकी तो उसे अपने दोनों पैरों को खोल देने में कोई आपत्ति नहीं हुई। उसने अपने बुरके का घेर ऊपर उठा लिया।

एक मजूर ने उसके दोनों पैरों में चिकोटी काटकर उनकी मांसलता की पुष्टि कर ली। वे दोनों पति-पत्नी उसे अपने ऊपर आये हुए खोटे समय की ही विडंबना समझकर रह गये।

एक ही खेप में वे और उनका सारा सामान दूर कहीं ओट में पहुंचा दिया गया। तुरत ही महाराज को इसकी सूचना दी गयी और वे अपने राजगुरु के साथ वहां आ पहुंचे।

सहदेव के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ का आयोजन किया जा रहा था और उसकी ओट में लक्ष्य था, उनका कोटारानी से विवाह।

पुरोहित ने उस भूमि पर इधर-उधर घूमकर दिशाओं का बोध किया और फिर वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए अपने कमंडल में से जल

छिड़ककर उस विधर्मी के पैरों से रौंदी गयी भूमि को पवित्र किया। फिर वहां पर यज्ञशाला के लिए चार खूटियों की जगह नियत की और हवन-कुंड के वास्ते जो स्थान अंकित किया, दैवयोग से वह यानों के आभूषणों की समाधि निकली।

और इस संयोग को क्या कहा जाये। पुरोहित ने कहा, "महाराज, हवनकुंड पर तो आपको ही परिश्रम करना होगा। आपके हाथ से एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा जायेगा।"

सहदेव ने मजूर के हाथ से कुदाल ले लिया और उत्साहपूर्वक खोदना आरंभ किया। आधा हाथ भी नहीं खोदा था कि कुदाल उस हांडी पर बज उठी। सहदेव ने उसका ढकना खोलकर देखा तो उसमें सोने के रत्न-जटित आभूषण नजर आये! राजा ने उसे सबसे छिपाकर अपने उत्तरीय में बांध लिया।

कोटारानी ने रामचंद्र के उस घोड़े पर अपनी प्रभुता जता दी। उसके दाने-घास, खरहरे-मालिश, खोले-बांधे जाने का सारा प्रबंध राज्य पर ही था, रानी को केवल संकेत देने की ही आवश्यकता होती, और घोड़ा तुरंत ही उसके भवन के द्वार पर खड़ा होकर हिनहिनाने लगता, मानो वह राजसिंहासन पर उसे प्रतिष्ठा देने की पुकार थी।

अपनी राज्य-लिप्सा का उस घोड़े को वह अग्रदूत समझती, क्योंकि घर से भागने के अवसर पर उसीपर चढ़कर वह श्रीनगर जा पहुंची थी। कभी-कभी वह उस घोड़े पर चढ़कर वन में आखेट को निकल जाती, और उस प्रदेश की स्वामिनी हो जाने की भावना अपने मन में जगाती।

सहदेव को उसके इस स्वभाव का परिचय मिल गया था। उस दिन वह भी घोड़े पर सवार हो अकेला ही वन में आखेट के लिए चला जाता। वह कोटारानी के साथ इस एकांत मिलन का लाभ उठा लेना चाहता था।

एक दिन आखेट को गयी हुई कोटारानी ने पेड़ों के पत्तों में उनके बीच से निकलते हुए किसीकी सरसराहट सुनी, मुड़कर देखा तो कोई भी नहीं। उसने समझ लिया, हवा होगी। फिर जब भूमि पर पड़े हुए सूखे पत्तों में घोड़े की टापों का स्वर सुना तो उसका यह विश्वास बढ़ चला कि अवश्य कोई उसका पीछा कर रहा है।

उसने घोड़ा रोककर पुकारा, "कौन हो तुम ?"

वह घुड़सवार उसका अनुसरण करता हुआ सहदेव था। अब तो वह अवसर पाकर उसके सामने खुल पड़ा, फिर भी कोटारानी के मन में कोई परिचय नहीं जागा और अनजानी-सी वह चुप ही रह गयी, मुख पर कौतूहल और जिज्ञासा लिए हुए।

"अब ऐसा कहने लगी ? मैंने ही तो तुम्हें इस राजनगरी में प्रतिष्ठित किया है। मार्त्तंड के मंदिर की सूर्यपूजा भूल गयी क्या ? मैं ही तो तुम्हें यहां लाने वाला कश्मीर का महीपति सहदेव हूं।"

"हूंऽ, कश्मीर का महीपति ! क्या कहने हैं तुम्हारे ! लज्जा नहीं आती तुम्हें ? तुम अपनेको राजा कहते हो ? तुम्हारे राज्य में सर्वत्र अराजकता है। भीतर दरिद्रता-भरे घरों में हाहाकार, बाहर प्रजा निरक्षर। उसे एक ओर से व्यापारी लूट रहे हैं दूसरी ओर बाहर के आक्रामक !"

"हे सुंदरी ! तुम राज्य की आकांक्षा तो रखती हो, पर क्या कभी राजसभा में भी पधारी हो। यदि आयी होती तो तुम्हें यह ज्ञात होता कि हमने उन बाहरी डाकुओं की जाति को मिटाकर उनकी भूमि को कश्मीर राज्य में मिला लिया है।"

"हां-हां, यह सब मुझे ज्ञात है। पर यह हुआ तो है मेरे चाचा के ही पराक्रम से।"

"तो क्या मैंने उनकी इस योग्यता का कोई मोल नहीं लगाया है ? राजसभा में क्या उनका आसन ऊंचा नहीं किया है ? और क्या मैं बाहरी शत्रुओं का आतंक दूर करने के लिए उन्हें सेना में सर्वोच्च पद नहीं दे देने वाला हूं ?"

"यह तो सब ठीक है, पर भीतर जो शत्रु हैं। बौद्ध और शैव संप्रदायों

के बीच का कलह, निरक्षरता, दरिद्रता और महामारियों के आक्रमण से रक्षा की समस्य'''"

"उसके लिए भी मैंने मंत्री रामचंद्र को इन सुधारों को सपन्न करने की शक्ति और साधन दिये हैं। वे तुम्हारे चाचा ही तो है, तुम्हें उनका विश्वास करना चाहिए।"

"हूं ऽ," कहकर कोटारानी किसी सोच-विचार में पड़ गयी। उसने अपने हाथ मे लिए हुए धनुष को एक कंधे पर लटका लिया।

अधीरता से विश्रांत सहदेव कहने लगा, "हे सुंदरी, तुम फिर किस चिंता में पड़ गयी हो ? राजसिंहासन जब तुम्हारा लक्ष्य है तो फिर अकेले ही तुम क्यों उस सूने भवन की शय्या पर पड़ी स्वप्न देखती हो ? क्यों अपनी आयु के वसंत में पतझड़ लाती हो ?

"जब तुम्हें इतना कह सकने का साहस है तो फिर क्यों चोरों की तरह छिपे-छिपे मेरा अनुगमन करते हो ?" उसने घोड़े को कसकर एक एड़ लगाई। घोड़ा हवा हो गया।

कोटारानी उस सघन वन में न जाने किधर लुप्त हो गयी। बहुत देर तक वह इधर-उधर उसकी खोज में भटकता रहा, फिर देर हो जाने के भय से लौट गया।

लौटते हुए अचानक उसे वन में कोटारानी के किसी संकट में फंस जाने की चिंता हुई। नगर में वह उसके भवन के समीप जा पहुंचा। उसके भीतर जाने का उसे निषेध था। अतएव उसने बाहर ही बाहर उसकी एक दासी से पूछकर जान लिया कि वह बहुत देर पहले लौट आयी है।

फिर सहदेव रामचंद्र की खोज में चला। वह अपने निवास पर नहीं लौटा था। हारकर वह अपने प्रासाद में जाने लगा। जिस सेवक ने उसका घोड़ा पकड़ा, उसने बताया कि रामचंद्र अभी सभा भवन में ही बैठे हैं।

संध्या ढलने लगी थी। सहदेव सीधा सभा भवन की ओर चला। उसने सभी अनुचरों को विसर्जन दे दिया। सभा भवन सूना था। पर उससे संलग्न एक कोठरी में एक दिया टिमटिमा रहा था। वहीं एक चौकी पर, गाल पर हाथ रखे रामचंद्र एक पत्र पढ़ रहा था।

महाराज के आते ही वह उठ खड़ा हो गया और कांपते हुए हाथों से

उनको वह पुर्जा थमा दिया।

पत्र पढ़कर सहदेव ने बड़ी लापरवाही से कहा, "तुम्हें मार डालने वाला ऐसा छिपा हुआ कोई चोर नही हो सकता। युद्धभूमि मे तुम सामने की चोट का मुकाबला करोगे क्योंकि तुम वीर हो। ऐसे गुमनामों की धमकियो से तुम्हारी वीरता को ही बढ़ावा मिलेगा, और तुम रात-विरात अकेले सूनी सड़को पर विचरना छोड़ दोगे, बस।"

"रात-विरात मैं अकेले घूमता ही कहा हू ?"

"कुछ गुप्तचरों ने मुझे बताया तो है कि तुम कोटारानी के भवन से कभी-कभी आधी रात मे भी आते-जाते हो। मैं इसपर कोई सदेह क्यों रखू कि मुझे तुम्हारे और उसके वीच का सबध ज्ञात है।"

"जाता तो मैं उनके पास आपके ही लिए हूं। राजकार्य मे व्यस्त रहने से और दूसरा समय ही कहां मिल पाता है ?"

"अच्छा, तुम अभी कोटारानी के पास जाओ। मैं आज उनसे निर्जन वन मे मिला हूं। मैंने आज उन्हें अपनी ओर ढला पाया है, तुम इस समय उनसे थोड़ा भी आग्रह करोगे तो वे बड़ी सरलता से मेरे अत.पुर के मार्ग मे आ जावेगी। जाओ, अभी रात अपने बचपन ही मे है और तुम्हारा घातक अभी कोई पैदा ही नही हुआ है।"

"पर वे सध्या होते ही अपने भवन के सभी द्वार बद कर देती है, और बाहरी तथा भीतरी प्रहरियों मे से कोई भी किसी के लिए द्वार नही खोल सकता क्योकि द्वारो में वे स्वय ही ताला लगा चावी अपने सिरहाने रख लेती है।"

फिर यह आग्रह दूसरे दिन के लिए टल गया। दूसरे दिन जब रामचद्र कोटारानी के निवास पर पहुंचा, तब रानी घोड़े पर सवार होकर वन की सैर को निकल चुकी थी, सहदेव ने रामचंद्र को फिर भी वन मे भेज दिया। जब संध्या तक भी वह उसका कोई सधान नही पा सका तो सहदेव की उतावली इतनी वढ गयी थी कि उसने रामचद्र को, उसकी प्रतीक्षा करने को, उसके द्वार पर ही बैठा दिया।

कोटारानी उस दिन सूर्योदय के समय ही आखेट को निकल चुकी थी। नहा-धोकर खाया कुछ नही, कलेवे के लिए कुछ पकवान दोने में रख

एक कपड़े मे लपेटकर कमर से बांध लिया।

घोड़े को भगाती हुई वह झेलम के पार पहुंच गयी। एक पहाड़ी पार कर, शाहमीर और उसके साथियों की छावनी पार कर, एक घने वन में जा पहुची। दूर से झाड़ियों के बीच मे उसने एक काली आकृति को भालू समझा और उसपर तीर चलाकर अपने सधान की सार्थकता जांचनी चाही।

तभी उसने एक नारीकंठ की चीत्कार सुनी, तो घबराकर घोड़े से नीचे कूद पड़ी और दौड़कर उसके पास जाकर देखा तो एक सुंदरी दोनों हाथो से अपना दाहिना पैर पकड़े हुए बैठी थी। उसने किसी शिकारी के आगमन पर अपना मुख बुरके से ढक लिया था।

"इस तरह काले कपड़े में लिपटी भालू बनी हुई कौन हो तुम?"

उसने कोई उत्तर नही दिया। उसकी सिसकी कोटारानी को निकट पाकर विलोम पर आ गयी थी।

कोटारानी ही फिर बोली, "कहां चोट लगी? मेरा ही क्या कसूर! धोखे से ही छोड़ दिया तीर। पर तीर तो वह पड़ा है, उस पाकड़ की जड पर। तीर तो नही, तुम्हे डर लग गया। देखू तो सही।"

अब अपनी सहायिका के रूप में एक नारी को पाकर उसने अपना संकोच छोड़ दिया। कोटारानी अब उसके पैर पर का कपड़ा ऊपर कर लेने मे समर्थ हो गयी। उसने देखा कही कुछ भी नही। तीर का तीक्ष्ण लोहा नही, उसको वहन करने वाली लकड़ी उसकी टांग पर से रगडती हुई चली गयी थी।

कोटारानी हसने लगी, "कुछ भी नही हुआ! तीर तो वह पडा है, पाकड़ की जड पर लज्जा से अपना सिर छिपाये हुए। कौन हो तुम? तुमने क्यों अपना मुख ढक रखा है?" उसने उसके मुख पर का कपड़ा हटा दिया, "तुम क्या करने आयी हो इन झाडियों में अकेली? फिर क्यो न मैं धोखे मे पड़ जाती?"

"हा, मैं हूं!" वानो इतना ही कह सकी।

"समझ तो गयी हू मैं तुम्हें। इन्ही परदेसियो में से कोई हो, जो उस पहाड़ी पर अपना डेरा डाले हुए है। क्या कर रही हो तुम यहां? इतनी दूर क्यो आयी हो? यहां तो पानी भी नही है।"

"मैं पेट भरने के लिए जंगली बेर तोड़ने आयी हूं।"

"तुम इतनी रूपवती नारी हो। तुम्हारा अंग-प्रत्यंग कह रहा है कि तुम इस कठिन श्रम में पली हुई नही हो। तुम्हारे कंठ की माधुरी ने तो मुझे और भी विवश कर दिया है। पेट भरने को क्या तुम्हे रोटी नही मिलती? कौन-कौन है तुम्हारे यहा खाने वाले?"

"मेरे शौहर और एक बच्चा। झेलम के किनारे एक डेरे मे हम रहते थे।"

"तुम्हारे शौहर क्या बीमार है, जो काम नही कर सकते?"

"नही, यहां उनके लायक कोई काम उन्हें नही मिला। कोई उन्हें ठीक तरह से जानता नही है।"

"क्या वे संगीत जानते है? मुझे सिखा सकेंगे? उनकी उमर क्या है?"

"नही, वे गाना नही जानते। वे लोगो पर राज करना जानते है।"

कोटारानी मन मे सोचने लगी, क्या यह भी कोई मेरी तरह राज्य की लालसा मे उद्भ्रात मनुष्य है? बेर खिलाकर भी उसकी पत्नी क्यो उसके सपने को संजोये है? उसने पूछा, "क्या उन्होने कभी कही राज किया भी है?"

"हां, किया है। सुआत की घाटी में इनके पिता का राज्य था। उनके मर जाने पर सौत के बेटो ने इनका हिस्सा छीनकर इन्हें देश से बाहर निकाल दिया।"

"तो यहा क्यो आये हो?"

"सौतेले भाइयों के जुल्म का बदला लेने।"

"बेर के दाने खाकर वह बदला कितने दिनो मे चुक जायेगा?"

"राजा को राजा की मदद करनी चाहिए। कश्मीर के महाराज क्या इनपर किये गये जुल्म को सुनकर इन्हे मदद न देंगे? पर अभी तो हमें उनके कानों तक अपनी आवाज पहुंचाने का मौका भी नही मिला।"

कोटारानी मन में सोचने लगी, 'अगर मैं इस राज्य की रानी होती तो अवश्य इसकी सहायता कर देती।'

"पर अभी तो हमारे ऊपर से बदकिस्मती का साया गया ही नही है।

राजा के नौकर-चाकरों ने हमें इतने घोर जंगल में खदेड दिया है।" वह फफक-फफककर रोने लगी, "हमारा डेरा उखाड़कर दूर फेंक दिया।"

"घबराओ नहीं दीदी। मेरे हाथों में शक्ति आने, दो मैं तुम्हारी मदद करूंगी।" कोटारानी ने उसकी कमर तक बुरके की ओट हटा दी। "यह क्या, तुम तो बिल्कुल ही नंगी-बूची हो। तुम अपनेको राजकुल की कहती हो, और न तो तुम्हारे कानों में कोई बाली, न गले में माला न हाथों में कोई चूड़ी।"

"बहुत कुछ लाई तो थी। सब चोरी चला गया।"

"कैसे ?"

"चोरों के डर से मैंने वहां अपने बेशकीमत जेवर हांडी में बंद कर ज़मीन में गाड़ दिये थे। उस दिन राजा के सिपाहियों ने आकर हमारा डेरा उखाड़ हमें फौरन दूर पहाड़ पर पहुंचा दिया। हमारा सारा सामान लाद-कर वहां पहुंचा दिया। मैं भेद खुल न जाये, इस सबब चुप रही और सोचा था कि रातों-रात वहां आकर अपनी हांडी खोद ले जाऊंगी।" वह फिर उसी तरह रोने लगी।

"तो उन्हें तुम्हारे गड़े जेवरों का पता कैसे चल गया ?"

"खुदा जाने कैसे, जब मैं रात को वहां अकेली गयी तो मैंने देखा, वह जगह खोद दी गयी थी और वहां मेरी हांडी का कोई पता नहीं था। मैं सिर पीटकर रह गयी और करती ही क्या ?"

"राजा के मजदूर ही उसे खोद ले गए होंगे। तमने राजदरबार में जाकर दुहाई नहीं दी ?"

"मैंने उनसे कहा तो था, पर वे बोले, हम परदेसियों की सुनाई कौन करेगा ? कहीं हम यहां से भी न भगा दिए जावें। इसलिए चुप रहे। क्या आप हमारी कुछ मदद न करेंगी ?"

"तुम्हारी तरह से मैं भी यहां पर परदेसी ही हूं। [illegible] ने मेरी मदद कर दी तो उसमें तुम्हारा [illegible] इस समय इतना ही लो। मैं [illegible] कोटारानी ने अपनी कमर का [illegible] दिया और बिना उसकी कोई [illegible]

वानो सोचती ही रह गयी, यह बड़े अजीब तरह की औरत है। अपना कुछ पता-निशान भी नही दे गयी। क्या फिर कभी मिलेगी?

कोटारानी इधर-उधर आखेट करती हुई जब अपने भवन में लौटी तो रामचंद्र वहा धरना दिये बैठा था। कोटारानी के द्वार पर पहुंचते ही प्रहरी घोड़े को पकडने के लिए आगे बढ़ने लगा। रामचद्र ने उसे रोक दिया और स्वयं ही घोड़े की लगाम पकड़ ली।

"है! है! सेनापति जी, यह क्या करते है आप?"

"कश्मीर की महारानी की जय!" रामचंद्र ने लगाम सईस को दे दी।

"कैसी महारानी?"

दोनों भीतर को चले।

"धरती पर की स्वर्ग-भूमि, प्रकृति ने जिसे अपने हाथों से श्री-सौंदर्य-संपन्न किया है, मनीषी-कवियों ने जिसे अपनी विद्या-कविता से स्वरित किया, कलाकारों ने जिसे रस-रूप से जाग्रत् किया है, उस कश्मीर की राजरानी बनने के लिए कहता हू। जिसके लिए आप एक किसान के घर मे प्रकट होकर यहां आपसे-आप खिंच आयी है।"

"चुप रहो, मुझे सिंहासन चाहिए, उस कायर की शय्या नही।"

"नारी क्या अकेले ही अपने मे अभिजात है? नही, उसे लोकलाज के परिहार के लिए एक जीवन-सगी की आवश्यकता है। अकेले ही एक अंक का क्या मोल होता है?"

"और तुम मुझे अंकशायिनी बना देना चाहते हो उस राजा की जिसकी प्रजा में रोटी का हाहाकार है, न्याय सही-संतुलित नही है, जनता सुरक्षित नही।" कोटारानी ने शय्या पर बैठकर रामचंद्र को चौकी दिखा दी।

"यह सब शनै:-शनैः ठीक होता जा रहा है। महाराज ने यह भार मुझे सौंपा है और मैं उसके लिए कटिबद्ध हूं।" रामचद्र ने एक हाथ कटिबंध मे खोंसकर दूसरा आकाश मे उठा लिया।

कोटारानी हसकर बोली, "चौकी पर बैठो तो सही। और भी अपने महाराज का गुणगान सुन लो। आज भी मैं शायद उसीको देखने के लिए

आखेट में गयी थी—बड़ा कारुणिक, परम दुर्भाग्य ।"

चौकी पर बैठते-बैठते रामचंद्र उठकर खड़ा हो गया, "क्या-क्या? कहो भी तो।"

"एक सुदर्शना, तुम्हारे राजा की शरण में आयी हुई, यहां लूट ली गयी है और वह बेचारी अपने कुटुंब के भरण-पोषण के लिए वन में कंद-मूल खोदकर ले जाने को विवश हुई है।"

"कौन है वह?" गाल पर अंगुली चुभा सोच-विचार में डूबा रामचंद्र बोला।

"उतावली में नहीं, बैठकर भूतकाल में दृष्टि का तीर छोड़ो। क्यों नहीं दिखाई देगा! तुम राज्य में सुधार के पक्षपाती हुए हो न? झेलम के किनारे किसके डेरे उखाड़कर तुमने दूर पहाड़ी पर फेंकवा दिये?"

"फेंकवाये नहीं। उन लोगों की एक-एक चीज अपने मजूरों को लगाकर एक उचित स्थान पर उनका डेरा जमाकर सब रखवा दिया।"

"और उस नारी के अंग पर के बहुमूल्य आभूषणों का हरण कर उसे नंगा कर रख दिया, बलिहारी है।"

"वह सुआत की घाटी के सरदार का सौतेला भाई, न जाने वहां कौन-सा विद्रोह कर यहां चला आया? यदि उसके द्वारा मार डाले गये लोगों के सगे-संबंधी अपना बदला चुकाने के लिए हमारी भूमि पर आ धमके तो क्या होगा? अच्छा जाने भी दो, उनका विग्रह उन्हींके सिर पर! महाराज को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए झेलम के किनारे वही भूमि उपयुक्त बतायी पंडितों ने गणना कर!"

"हुंह! पंडितों की गणना!" कोटारानी ने बात को हंसी में उड़ाते हुए कहा।

"अब क्यों पंडितों की गणना का उपहास करती हो? क्या उनके ही शब्दों ने तुम्हें जन्मभूमि से निकाल यहां तक राजभवन में प्रतिष्ठा नहीं दी है?"

"अरे रामचंद्र, तुम्हें किस पंडित की गणना ने राजसभा की ऊंची चौकी पर बैठाया? मैं अपने स्वप्नों में सचाई भरने यहां आयी हूं। मैंने मार्त्तंड के उस मंदिर का भी स्वप्न में साक्षात्कार किया था।"

"तो वहा क्यो नही तुम्हे महाराज सहदेव दिखाई दिये ? इसे भी क्यों नही तुम नियति की नियुक्ति समझती । चलो, उनकी ओर अपना हाथ बढ़ाओ । जहा पुत्रेष्टि यज्ञ होने वाला है, वही तुम्हारा पाणिग्रहण क्यो न हो ?" रामचद्र ने कोटारानी के कधे पर अपना हाथ रख दिया ।

उसने तत्क्षण उस हाथ को हटाते हुए कहा, "न पुत्रेष्टि यज्ञ से ही उसे राज्य का अधिकारी मिलने वाला है, और न उस मडप को स्वयवरशाला बनाकर ही ।"

'क्या कारण है ?"

"वह राजा कायर है, उसमे कोई पौरुष ही नही ।"

"यह कैसे कहती हो ?"

"वह अपनी सभी रानियो को राज्य का उत्तराधिकारी न दे सकने का दूषण देता है, अपना अपराध नही देखता ।"

"उनका अपराध कैसा ?"

"स्पष्ट शब्दो मे सुनो, वह क्लीव है, वह राजसिहासन पर टिक न सकेगा । राजसिहासन वीर, साहसी और पराक्रमी की ही शोभा है ।"

रामचद्र ने फिर उसके कधे पर हाथ रखकर कहा, "पद्मिनी, मैंने क्या कश्मीर के शत्रुओं को पराजित करने मे अतुल साहस और पराक्रम नही दिखाया ? यदि कश्मीर के सिहासन ने उसे विसर्जित भी कर दिया तो क्या ?"

"ठहरो-ठहरो । तो क्या हो जायेगा ? तुमने फिर मेरे कंधे पर हाथ रखकर मेरे बचपन के नाम से पुकारा । हाथ दूर करो और उसीके साथ अपनी उस महत्वाकाक्षा को भी ! कश्मीर के सिहासन पर बैठ जाने की हिम्मत न करो । मैंने तुम्हें चाचा बनाया है, उस सबध पर छीटा न डालो । कश्मीर के राज्य मे मैं तुम्हारी पदोन्नति प्रधानमत्री तक कर सकूगी, तुम्हें अधिक लालच करने की आवश्यकता क्यो हो ?"

"तुम जैसी भी आज्ञा दोगी, मैं वही करूगा ?"

"हां, करोगे । उस अबला को समझ गये न तुम ? जो उसके आभूषणो ा हरणकर ले गया, उसका हनन करो !"

"इसकी चेष्टा होगी ही पर पहले राज्य की ओर से उसकी जीविका

का प्रबंध होना उचित है।"

"तुम्हारे मुख से ये अच्छे शब्द निकले। क्या करोगे?"

"अपने-आप ही यह होता जा रहा है। सुआत के एक शरणार्थी शाहमीर ने अपनी कष्टकथा महाराज सहदेव के पास लिखकर राज्य में कोई नौकरी मांगी है। महाराज ने उसे सच्चाई की जाच के लिए मेरे पास भेज दिया है।"

"किस काटे पर तोलोगे तुम उसे? चाचा, मुझे तुम्हारी नीयत डावा-डोल जान पड़ती है।"

"उस विधर्मी की नीयत का ही क्या भरोसा? हमारी दया उभारने को ही यदि वह एक कहानी बनाकर ले आया हो और धीरे-धीरे अपना दल बढ़ाकर सारे कश्मीर पर ही छा गया तो?"

"छा कैसे जायेगा? मैं दुर्गा जो यहां आ गयी हूं। मैं शरणार्थी नहीं हूं। स्वयं कश्मीर का राजा मेरी शरण चाहता है।"

"तो उनके बारे में इस किंवदंती का विश्वास करना भी उचित नहीं है। राजनीति यह नहीं कहती कि तुम विवाह के लिए उनसे स्पष्ट 'नहीं' कह दो।"

"फिर क्या कहूं?"

"गुप्त रूप से उनकी परीक्षा लो और स्पष्ट रूप से कहो कि अभी कुछ ठहर जाइए।"

"पर तुम उस शरणार्थी की कैसी परीक्षा ले रहे हो?"

"यहां प्रजा के बौद्ध और शैव सम्प्रदायों मे कुछ विवाद चल रहा है। मैंने शाहमीर से उनके विवाद को मिटाने के लिए कहा है। उसका निर्णय देखना है।"

सहदेव बड़ी उतावली से रामचंद्र के लौट आने की प्रतीक्षा कर रहा था। रामचंद्र के आते ही उसने पूछा, "क्यों, कब?"

रामचंद्र ने अपनी उपचेतना मे उसका उत्तर बनने के लिए छोड दिया और बात बदलकर बोला, "आज भी वे वन में आखेट पर गयी और वहां एक विचित्र संयोग हो गया···"

"वह फिर भी सुना जा सकता है। पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो मुझे।"

"वह तो होगा ही, इसीलिए कोटारानी यहां आयी है। उसीमें शीघ्रता लाने को यह संयोग हुआ।"

"फिर उसीको पहले क्यों नहीं कहते?"

"जंगल में कोटारानी को आज लकड़ी बीनती हुई शाहमीर की घर-वाली मिल गयी। उसने रो-रोकर उन्हें न जाने अपने दुर्भाग्य की क्या कथा गढ़कर सुनायी कि उसका सारा आरोप कश्मीर के अधिपति के सिर पर थोप दिया गया। पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए हमने उसका डेरा उखाड़कर झेलम के उस पार की पहाड़ी पर जमा दिया था।"

"वह परदेसी बिना हमारी किसी आज्ञा-अनुमति के कश्मीर की भूमि का अधिकारी हो कैसे गया? हम चाहते तो क्या उसके सारे सामान को अपनी सीमा के बाहर नहीं फेंकवा सकते थे?"

"हमारे ऊपर वह लाछन लगाती है कि हमने उसके बहुमूल्य आभूषणों का हरण कर लिया।"

अब तो सहदेव के अंतर्मन में छिपा दी गयी उस चोरी पर चोट पड़ गयी, "तो क्या कश्मीर का राजा ही चोर है?"

"नहीं, वह कहती है—आपके नौकरों-चाकरों में से ही किसीने यह किया है।"

अब फिर राजा की सांस नाभि से ही चलने लगी, "तो क्या कहती है वह?"

"हां, वह शाहमीर की घरवाली कहती है कि उसके पति को राज्य में कोई नौकरी दे दी जाये कि उनके छोटे-से कुटुंब की जीविका चले।"

"उसने दरबार में यह प्रार्थना लिखकर दी तो है, तुमने उसकी जांच की है क्या?"

"कोटारानी कहती है, उस अभागिनी की सहायता कर दी जानी चाहिए!"

"उसका करना न करना तो तुम्हारे ही वश की बात है। हमारे विवाह के बारे में वह क्या कहती है?"

उसमे दूसरे धर्मों के लिए कोई पक्षपात नही था। कट्टरपन और असहिष्णुता उसमे कुछ भी नही थी। धीरे-धीरे उसकी योग्यता देखकर रामचंद्र ने उसे राजसभा मे अच्छा ऊचा पद दे दिया।

अब एक दूसरी घटना घटी। लद्दाख के बौद्ध अधिपति को कुछ विद्रोहियो ने जान से मारकर उसका सिंहासन हथिया लिया। उसका बेटा रिंचन अपनी जान बचाने के लिए कश्मीर भाग आया। श्रीनगर आकर उसने सहदेव को अपना दुखड़ा सुनाया।

सहदेव ने उसे भी रामचद्र के पास भेज दिया। रामचंद्र ने अपने सहकारी शाहमीर की राय ली। वह बोला, "नही, इसे आश्रय देना ठीक नही। क्योकि लद्दाख के विद्रोही इसके लिए कश्मीर पर भी चढाई कर हमारे लिए भी सकट पैदा कर देंगे।"

रामचंद्र ने शाहमीर को साथ लेकर महाराज के सामने उपस्थित होकर यही तर्क प्रस्तुत किया।

सहदेव असतुष्ट होकर बोला, "शाहमीर, तुम भी एक शरणार्थी होकर यहा आये थे। हमने तुम्हे शरण दी। अवश्य ही तुमने अपनी योग्यता से यहा अपना पद बढ़ाया है। तुम क्यों इस शरणार्थी का विरोध करते हो?"

सहदेव को विवश होकर रिंचन पर दया करनी ही पडी। उसे श्रीनगर से बाहर एक छोटा-सा गाव जागीर मे दे दिया गया। वह अकेला ही था। उसने धीरे-धीरे उस गाव मे अपना व्यक्तित्व बढा लिया और मन मे अपने राजसी दिन। के सपने देखता रह गया, क्या वे दिन कभी लौट न सकेंगे?

सहदेव ने रामचद्र को अब प्रधान सेनापति बना दिया। फिर जब उसके बूढे प्रधानमत्री का स्वर्गवास हो गया तो उसे ही उस रिक्त स्थान मे नियुक्त कर दिया। यह पदोन्नति उसकी योग्यता के कारण भी हो सकती है। पर मूल मे महाराज ने यह सब उसकी भतीजी कोटारानी के पाणिग्रहण के ही लिए किया। पर वह रूप की अभिमानिनी न जाने किस मार्ग से कश्मीर की महारानी बनना चाहती थी कि सहदेव की अभिलाषा अब तक पूरी न हो सकी।

रिंचन के कश्मीर-प्रवेश के एक वर्ष बाद अर्थात् सन् १३१८ ई० में अचानक उस देवभूमि पर वज्रपात हो गया। एक विदेशी क्रूर आक्रामक ने अकारण ही बड़ी भारी सेना लेकर कश्मीर पर आक्रमण कर दिया।

उसका नाम था जुलकदर खां। वह डलचा या जुलचू जाति का था। साठ हजार दुर्दांत रुधिरपायी सैनिकों को लेकर वह कश्मीर का ग्रास करने चढ़ आया।

निर्धन-निरीह प्रजा के धर्म के ध्वंसक, उसके सुख-संपत्ति के लुटेरे, उसकी लज्जा और शील के अपहरणकर्त्ता, वे अरक्षित अबलाओं के रूप के प्यासे, उन्होंने उस शांति और संतोष के वातावरण में हाहाकार फैला दिया।

वह आततायी वहां की निर्दोष प्रजा पर अत्याचार करता हुआ गांवों और नगरों को लूटता-खसोटता बढ़ आया। भूखे भेड़िये के समान उन्होंने न तो भोली-भाली प्रजा के साज-सामान को ही सुरक्षित रहने दिया, न ही उनके मान-सम्मान को।

उनके जानवरों ने उनकी खेती चर दी, रौंद दी। उसके सैनिकों ने उनके खाने-पीने की चीजें नहीं छोड़ी, सोने-चांदी पर हाथ मारा, बहू-बेटियों का अपमान किया। उनके घर-द्वार तोड़ दिये, सर्वस्व लूट ले गये, शेष तोड़-फोड़कर आग लगा गये।

जहां किसीने कुछ विरोध किया कि अपने सर्वनाश को निमंत्रण दे दिया। फिर उन अंधों को दया-धर्म कुछ भी नहीं दीख पड़ा। उन्होंने भयानक नरसंहार कर उस पवित्र भूमि पर रक्त की सरिताएं बहा दीं। मकानों को तोड़कर उनके खंडहर भूमि पर बिछा दिये। घरों में आग लगाकर उनके निवासियों को निरन्न, निर्वस्त्र और निराश्रय भटकने के लिए छोड़ दिया। वह अनेक मनुष्यों को पशु बनाता हुआ बढ़ गया। सैकड़ों को लूटी हुई संपत्ति ढोने की बेगार में पकड़ लिया। बहुतों को लूटे हुए सामान की गाड़ियों में बैलों की जगह जोतकर ले गया।

गर्गी ने जैसे ही एक प्रपात में अपनी कलसी भर सिर पर रखी कि उसे परले गांव के दर्जी का बेटा कुलन दौड़ता आता दिखाई दिया। वह खून-लुहान था, सिर में उसने जो पट्टी बांध रखी थी, वह भी भीगकर लाल हो गयी थी।

पैर से लंगड़ाता हुआ, फटा फेरन पहने, दयनीयता की साक्षात् मूर्ति बना, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों में भी करुणा जगाता हुआ वह चला आ रहा था। राशी को देखते ही वह चिल्लाया, "राशी ! भाग-भाग, आज कश्मीर का अभिशाप साक्षात् होकर चला आ रहा है। भाग-भाग, जल्दी भाग !"

राशी ने वह छलकती हुई गगरी सिर पर से उतारकर हाथों में ली, "कहा भागू ? मैं घर जाती हू।"

"नहीं, घर में भी क्या दरवाजे बंद कर उनमें सांकल चढ़ाकर रक्षा मिल जायेगी ? नही मिलेगी, मिल ही नही सकती। उनके हाथों में बड़े-बड़े सब्बल और धन हैं। उनकी मुट्ठियां ही इस्पात की बनी है। आज कुछ भी सुरक्षित नही रहेगा। जा, अपने माता-पिता सभीसे भाग जाने को कह।"

"कहा ?"

"पहाड़ों, जगलो और झाड़ियो में। शायद वहा भी सकुशल न रह सकेंगे। फिर कहां बताऊं ? आज एकमात्र सुरक्षा झेलम के पानी में है, यह किस मुख से कह दू ? राशी, भाग-भाग ! घर में, गांव मे, सभीसे कह दे, वे भाग जावें।"

"हमने जो वादे किये थे···?"

"उन्हें भी इस गगरी की तरह धरती पर गिरा भार-विहीन हो चली जा।"

"तू कहां जा रहा है ?"

"अदृष्ट कुहासे में खो जाने के लिए। देख, वे थोड़ी ही देर में आ पहुंचेंगे। मैंने सभी कुछ तुझसे कह दिया। अब अधिक बातें कर हम अवसर न खो दें।" बुलन जंगल की ओर दौड़ गया।

राशी ने कलसी वहीं पर छोड़ दी। फेरन उसके भागने के वेग मे बाधक हो गया था। उसके घेर को एक हाथ मे समेट, दौड़ी-दौड़ी घर जाकर उसने पुकारा, "मा।"

मा चूल्हे मे रात की राख मे सोये अंगारो को जगाकर उनमें कुछ घास-फूस डाल, फूक मारकर लपटें उठा रही थी। श्रम से उसके गालों में

लाली और धुए से आंखों मे पानी आ गया था।

माता ने अपने काम की धुन में लड़को के सबोधन पर कोई ध्यान नही दिया। राशी ने हड़बडाकर माता की पीठ पर लटकती चोटी खीच ली। मां ने फटकार लगाई, "क्या है छोकरी ?"

"वे आ रहे है ! मां भागो, भागो ! सब कुछ यही छोड़कर भाग जाना है। बुलन रोता-चिल्लाता, खून में सना अपनी जान बचाकर भाग गया और सभीसे भाग जाने को कह गया, गाव छोड़कर।" राशी ने रोते-रोते ही कहा।

अब तो माता के मन में भी डर समा गया। अश्रुसिक्त आखो से देखते हुए उसने पूछा, "कौन आ रहा है ? डाकू तो रात मे आते है।"

पिता कुछ सब्जी सिर पर लेकर नदी के मार्ग से श्रीनगर की हाट को ले जाना चाहता था। बीच ही मे जुलकदर खा की सेना के अत्याचारों की चर्चा सुनी तो सिर का भार नदीतट पर ही रख, सीधा घर को दौड गया। वह दूर ही से चिल्लाया, "अरी राशो की मां, बच्चो को लेकर बाहर निकल आओ।"

"कहा जावेंगे ?"

"दुभार के अखरोट के जगल मे।"

"घर, माल-असबाब ?"

"ये लुट भी जावें तो क्या, इज्जत बडी चीज है।"

"वहां खावेंगे क्या ?"

"फल-फूल, कद-मूल।"

"ओढने को भी तो चाहिए।"

"आग जला लेंगे।"

"रातें लबी होती जा रही है। जाड़ा कड़ाके का है।"

दूरी पर सचमुच ही सुनाई दे रहा था, या सभीके कान बज उठे, "अल्ला हो अकबर ! अल्ला हो अकबर !"

गांव के सभी लोग भागे जा रहे थे। बच्चो को लेकर वे भी भागने लगे। किसीको किसीके साथ बातें करने का अवकाश ही नही। किसी-को भी यह पूछने का साहस नही हुआ कि कहां है महाराज, और .

उनके मंत्री-पार्षद और कहां उनकी सेना ?

कौन है यह कश्मीर का महाराज ? जो प्रजा का रक्षक था, पर जिसकी पांचों इंद्रियां उसकी भक्षक हो गयी। फिर क्या था, उसके चाटुकार मंत्रियों ने उसके विलास को समर्थन देकर स्वयं भी उसका मार्ग ग्रहण किया। फिर उसके अनुचरों को ही क्या पड़ी थी कि उस सहज मार्ग को छोड़कर दूसरी दिशा पकड़ते।

कौन है यह कश्मीर का महाराज ? कहां है उसकी सेना और उसका सबल ? ये कश्मीर के महाराज सहदेव हैं। स्वभाव से डरपोक, कोई शक्ति नहीं, कोई साहस नहीं जिसमें। जब राजा की ही यह दशा हो तो उसके मंत्रियों में क्या स्फूर्ति होगी ? और सेना में ही शत्रु का सामना कर सकने का कर्तव्य कहां से उजागर होता ?

हां, यही हैं वे कश्मीर के राजाधिराज, दुर्ग की दीवारों के भीतर से अपनी निरीह प्रजा को शरण के लिए दौड़ता-भागता देख रहे हैं। कोई अपने वृद्ध माता-पिता को सहारा देते हुए, कोई रोगी-अपंगों को गोद-पीठ पर लिए, कोई अन्न-धन की पोटलियां लिए चले जा रहे हैं। दूरी पर कहीं आकाश में धुआं उठ रहा है, कहीं घरों पर घनों की चोटें पड़ने से चूने-मिट्टी के बादल उड़ रहे हैं।

द्वारपाल ने माथा नवाकर कहा, "महाराज, अनेक मंत्री और कर्मचारी सेवा में उपस्थित हैं।"

महाराज सहदेव उत्तर में स्वयं ही द्वार तक दौड़ गये। उनका गला रुद्ध था, डबडबाई हुई आंखों से ताकते हुए वे बोले, "अब क्या करें ?"

"ऐसे घबरा जाने की क्या बात है ? महाराज, भगवान पर विश्वास कीजिये। हम सभी लोग आपके साथ एकमत हैं, आज्ञा करें।"

"हां रामचंद्र, मैंने इसी दिन के लिए तुम्हें अपना प्रधानमंत्री बनाया है। तुम्हारी सूझ-बूझ निराली है। तुम्हारी स्पष्टदर्शिता पर रीझकर ही मैंने तुम्हें सेनापति के पूरे अधिकार सौंप दिये हैं। इस समय सबसे पहला काम तुम्हीपर है। सेना को संगठित करो, सेना को संगठित करो ऽऽ!" कहते-कहते वह चिल्ला उठा। रामचंद्र का हाथ पकड़ नीचे मैदान में इकट्ठी सेना की टुकड़ियों को दिखाते हुए कहने लगा, "ये सैनिक लोग, बिना

सेनापतियों की आज्ञा पाये ही कहा भागने लगे ? एक के पीछे दूसरा, दूसरो को देखकर सबके सब ।"

"वे दुर्बल मनो की रचना है । शायद कही शत्रु की चढाई का आभास पाकर उन्होंने अपने-अपने सेनापतियो की आज्ञा को इतना आवश्यक नही समझा ।"

"दुर्ग के भीतर हमारी सशक्त सेना है । वह बल, अस्त्र-शस्त्र और संख्या में परिपूर्ण है ।" रामचंद्र ने कहा ।

महाराज बोले, "पर हमारा यह दुर्ग सुरक्षित नहीं है । समय ने जगह-जगह इसे जीर्ण किया है, हिम, वर्षा और आतप इसपर टूटे है और इसकी सधियो मे चूहो और गिलहरियों ने बिल खोद दिये है ।"

"मैं अभी राज और मिस्त्रियों को बुलाकर सब ठीक करा देता हू ।"

"वे क्या तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा मे है ? और क्या उनके आने तक शत्रु रुक जावेगा ?"

रामचद्र ने अपनी दृष्टि दूर दौड़ाई, "महाराज, शत्रु का ध्यान हमारे इसी दुर्ग पर है । उसके यहां आने तक हम अपने गगनगिरि के दुर्ग में जा सकते है । वह सपूर्णत. दृढ़ और सुरक्षित है ।"

"हां, यह प्रस्ताव ठीक है । पहले राजपुरोहित को बुलाओ कि वह शीघ्रातिशीघ्र लग्न ढूढ निकालें ।"

"लग्न तो शत्रु की चढाई से आपसे-आप आ गया ।" एक मंत्री ने कहा ।

"नही, मेरा आशय कोटारानी से विवाह का है । अब तो उसे भी इस लग्न की यथार्थता प्रत्यक्ष हो जानी चाहिए । नही तो बिना किसी विधि-विधान के वह शत्रु के हाथों मे पड जायेगी ।"

"विवाह तो उनका आपके साथ होगा ही, पर उसके लिए यह समय उचित है क्या ?"

सहदेव ने हठ बांध ली, "मैं कहता हूं, यह आपातस्थिति ही उसके विवाह की है । नही तो जन्म, मृत्यु और विवाह का समय कौन बता सकता है ?"

रामचंद्र के मन मे क्रोध जाग पड़ा, "देश एक बर्बर विदेशी के आक्र-

मण से रक्तरंजित हो उठा है, इस संकट काल में तुम्हें विवाह की सूझी? कौन इस कर्म को समर्थन देगा?"

इतने ही में नीचे दिखाई दिया, कोई हवा में खड्ग चमकाता, घोड़े पर सवार उधर ही आ रहा था। सहदेव चिल्लाया, "वह देखो, कोटारानी ही आ गयीं। अब हमारे विवाह-संयोग में कोई संदेह नहीं।"

सहदेव ने चिल्लाकर आज्ञा दी, "इस महिला के मेरे पास तक आने के लिए प्रत्येक प्रतिबंध से विमुक्त कर दिया जाये।"

कोटारानी तुरंत ही सहदेव के पास आकर खड़ी हो गयी और बड़ी ममता-भरी वाणी में बोली, "चलिए।"

"अब और कहां? जहां पर पांच साक्षियों के सामने मैं तुम्हारा हाथ पकड़ लूं, वहीं क्यों नहीं हमारा विवाह है?" सहदेव बोला।

रोष से भरी कोटारानी पैर पटककर बोली, "विवाह? देश का शत्रु तुम्हारी प्रजा के सिर पर टूट पड़ा है और तुम्हें विवाह की सूझी है? तुम्हारी इस कामना को धिक्कार है!"

रामचंद्र बोला, "यही तो मैं इनसे कह रहा हूं। इस दुर्ग में शत्रु सहज प्रवेश पा लेगा। गगनगिरि का दुर्ग सुरक्षित है। वहां हम सेना का संगठन कर शत्रु की गतिविधि पर रोक लगा सकेंगे।"

कोटारानी ने पूछा, "अंतःपुर की रानियों का क्या होगा?"

"उन्हें भी वहीं ले चलेंगे।"

"अच्छा, उन्हें मैं अपने संरक्षण में ले आती हूं।"

रामचंद्र ने कोटारानी की तेजस्विता से प्रभावित होकर उसकी बात मान ली। वह [illegible] महाराज सहदेव को बीच में कर अपने अधिनायकत्व में गगनगिरि के दुर्ग को चला।

कोटारानी ने साथ में कुछ अंगरक्षक लिये। वह घोड़े पर सवार होकर साक्षात् दुर्गा-सी होकर चली। अनुचरों ने उसके शौर्य से स्वयं प्रेरणा ग्रहण की। अंतःपुर के प्रांगण में घोड़े से उतरकर वह महारानी के कक्ष में गयी। द्वार बंद था।

अन्दर दासी ने बताया कि शत्रु के आक्रमण से रानियां सब एकत्र हुई हैं और उन्हें महाराजा सहदेव के संरक्षण का कोई विश्वास नहीं रहा,

इसलिए उन्होंने अपनी रक्षा का उपाय स्वयं ही कर लिया है।"

"क्या उपाय किया है ?"

"यह गुप्त ही रखा गया है।"

"क्या भीतर से देशांतर को निकल जाने के लिए कोई सुरंग है ?"

"यह तो मैं नही जानता।"

"तो उनसे कहो, मैं उनकी रक्षा के लिए ही यहां आयी हूं, मेरे साथ चलें।"

"यह आप ही कहें।"

"द्वार खुलवाओ।"

"आप कौन है ?"

"मेरा उनसे सामना तो करवाओ, मैं स्वय अपना परिचय दूंगी।"

द्वारपाल ने द्वार पर जाकर उसे खटखटाया, "महारानी।"

भीतर से आवाज आयी, "क्यों, क्या शत्रु की सेना दुर्ग के भीतर घुस गयी ?"

"नही, वह अभी दूर है।"

"महाराज कहां है ?"

"वे यहा से बहुत-सी सेना लेकर गगनगिरि के दुर्ग में चले गये है, वहां की सेना को भी सम्मिलित कर अपनी शक्ति बढा लेने को।"

"उनसे यही आशा थी। हमें यहां अरक्षित ही छोड़ गये ?"

"नहीं, आपकी रक्षा के लिए ही तो यह देवी आयी हैं।"

"कौन देवी ?"

"यही तो है। आप बातें कीजिए इनसे।"

कोटारानी ने खड्ग की मूठ से द्वार बजाकर कहा, "हां दीदी, मैं आयी हूं। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी। आप पटरानी हैं न ?"

"कौन हो तुम ?"

"दीदी, मैं वही गायिका हूं, जिसे महाराज मार्त्तंड के मंदिर से क्रय कर लाये है।"

"अच्छा, तू ही है वह ? तेरी ही मोहिनी में पड़कर वे विना अपनी अर्द्धांगिनी को साथ लिए सूर्य की पूजा करने जाते थे, इतने वर्षों से ?"

"मैं तो अभी आयी हूं यहां श्रीनगर में। आपने मेरे गीतों की साक्षी चाही थी। आपको वही गीत सुनाकर आपके संशय मिटाने आयी हूं। द्वार खोलिये।"

द्वार खोल दिया गया। कोटारानी खड्ग उत्तोलित कर भीतर प्रविष्ट होने लगी।

महारानी ने ताड़ना दी, "ठहर जा वहीं पर। तेरे हाथ में खड्ग है।"

"हां, इसी खड्ग से रक्तावरी रागिनी सुनाऊंगी। अपने गीत की मात्राएं गिन-गिनकर शत्रु के मुंडों को धरती पर गिरा ताल को संक्रमित करूंगी। मैं आपकी रक्षा करने आयी हूं।"

"हमने अपनी रक्षा के उपाय स्वयं ही सोच लिए हैं। तू क्या रक्षा करेगी हमारी, विषया?"

दांतों के नीचे उंगली दबाकर कोटारानी ने कहा, "महारानी, यह क्या कह दिया आपने? मैं तो आपके और आपके देश की रक्षा के लिए आयी हूं, आप ऐसा बुरा संबोधन मुझे देती हैं!"

"तू उसी बुरे संबोधन के योग्य है। मैंने तेरे माथे पर के लेख को पढ़ लिया। मैं कदाचित् उसका उच्चारण जल्दी में ठीक-ठीक नहीं कर सकी, वही है तू। जा, भाग जा यहां से। हम अपनी रक्षा के उपाय में स्वयं सन्नद्ध हैं।" पटरानी ने उसके मुंह पर थूककर द्वार बंद कर लिए।

कोटारानी ने आकाश में अपना खड्ग उठाकर कहा, "किस दुर्दैव ने महारानी की जिह्वा पर मेरे लिए यह विषैला शब्द लिख दिया? मैं तो इनके ही लिए सहदेव के आग्रहों को ठुकराती हुई चली आयी और इनकी यह दशा!"

फिर मन ही मन वह बोली, 'मैं वेश्या किस तरह? विवाह की प्रतिज्ञा मैंने ली ही कहां? क्या बारात आ जाने मात्र से विवाह हो जाता है? बकने दूं उसे! क्या पढ़ लिया उसने मेरे माथे पर का लेख?' वह चिंता में खड़ी ही रह गयी।

कदाचित् उसे सचेत करने को उसका घोड़ा हिनहिना उठा। प्रहरी कहने लगा, "तुम किस सोच-विचार में पड़ गयी हो? इसके लिए अब

समय कहां है ? उन लुटेरों के बीच में क्या तुम्हारा सम्मान सुरक्षित रह जायेगा ? जाओ, छिपकर कहीं अपनेको बचा लो, नहीं तो रानियों में मिलकर एकसाथ मरण भी क्या एक महोत्सव ही नही है !"

"सोच-विचार इसीका तो है। मैं उनकी भलाई के लिए आयी थी, पर उन्होंने मुझे जो गालिया दी, वही मुझपर गोलियों-सी लग गयी। पर मुझे अभी जीवित रहना है।" वह दौड़कर घोड़े पर चढ गयी और उसे एड़ लगाकर गगनगिरि के दुर्ग की ओर चल पड़ी ।

रामचंद्र सेना के संगठन में लगा था। जब उसे यह समाचार दिया गया कि एक सुंदरी नारी उससे मिलने के लिए द्वार पर खड़ी है, तो वह समझ गया और स्वयं दौड़कर द्वार पर चला गया ।

"क्यों महारानी जी, आप अकेले ही यहां आयीं ?"

"हा, भाग्य का लेख कुछ दूसरा ही है ।"

"क्यों, रानिया सहमत नहीं हुईं ?"

"मैं तिरस्कृत होकर आयी हू ।"

"फिर क्या विचार है ?"

"तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो ।"

रामचंद्र समझकर भी नही समझा, "तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?"

"मैं तुम्हारे महाराज की सहगामिनी होने को तैयार हूं। पर विवाह इस लुटेरे को देश से निकाल देने पर ही होगा।"

"यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। तुम्हारे इस प्रस्ताव से हम सभी-के भीतर एक नवीन शक्ति का जन्म हो गया। चलो, हम सबसे पहले महाराज को यह सुसमाचार सुना दें।"

पर दुर्ग का एक-एक कोना छान लिया गया और सहदेव का कहीं पता ही नहीं चला। रामचंद्र को यह समझते देर नही लगी कि वह कायर गगनगिरि के दुर्ग को भी निरापद न समझ, सिपाहियों के बीच से निकल-कर कही भाग गया।

रामचंद्र ने अपने मन में कहा, 'भाग्यहीन ! जब उसकी सबसे बड़ी इच्छा के पूर्ण होने की घड़ी आयी तो स्वयं अंतर्धान हो गया। इसमे किसका दोष !'

जुलचन्दर खा अपनी भयानक सेना के साथ आठ महीने राजधानी में रहा। उसके अत्याचारों से वह नगर खडहर हो गया। जनता में त्राहि-त्राहि मच गयी। कुछ लुटकर भाग गये। कुछ जो अवरोध बनकर सामना करने को खड़े हो गये, वे उन अत्याचारियो के आखेट होकर वीरगति पा गये।

नगर का सोना-चादी ही नही, बहुमूल्य ऊन, धातु और लकड़ी की कला-कारीगरी का सामान भी वह लूटकर ले गया। वही के हट्टे-कट्टे लोगो पर वह बोझ लाद दिया गया। कोड़ो की मार से उन्हें चलने पर विवश कर दिया गया।

जाड़े की ऋतु सिर पर आ गयी थी। मध्य एशिया के तातारी सैनिक कश्मीर की ठड से घबरा उठे। भोजन की भी कमी पड़ गयी थी। सब सैनिकों ने धन-सपत्ति की अच्छी गठरियां बाध ली थी। अब वे जल्दी से जल्दी अपने घर पहुच जाना चाहते थे।

पर कश्मीर से बाहर निकलने की छोटी से छोटी राह किसीको ज्ञात नही थी। यही अज्ञान उनके पापो के प्रायश्चित्त के रूप मे उनका मूर्तिमत सर्वनाश होकर जाग उठा।

कश्मीरी प्रजा के वे अनेक उनकी लूट का भार ढोने वाले, उन्होने आपस में समझौता किया।

बुलन, वह दर्जी का बेटा, सबसे पहले उसीके मन मे उस विचार-धारा ने जन्म लिया। दासी के साथ उसकी सगाई हुई थी। वह बेचारी उन पापियो के अनाचार से मृत्यु को प्राप्त हुई। उसको बचाने में बुलन को पकडकर बाध लिया गया था और उसके सिर पर लूट का माल लाद-कर पीठ पर कोड़ो की मार से चलने पर विवश किया गया था।

बुलन एक दिन आधी रात म जागकर अपने एक साथी के कान में बोला, "भाई, बच निकलने की मुझे एक राह दिखाई दे गयी। यदि मेरा कहना मान उधर से चलो तो हमारा सारा दुख-कष्ट समाप्त हो जायेगा।"

"चारो ओर इन तातारियो का घेरा है। वे बारी-बारी से रात-भर जागते ही रहते है। तुम किस सुरग से उनकी आंख बचाकर चले जाओगे?"

भावना के आवेश में वह बोला, "हां जाऊंगा, जाऊंगा और इन सबको भी अपने साथ ले जाऊंगा।"

"क्या बक रहा है? कहा ले जायेगा?"

"ले जाऊंगा, महाकाल की गोद में, जहा इन पापियों के पाप की इन्हें पूरी सजा मिल जायेगी और हमें अपनी जन्मभूमि के ऋण भरने का सुनहरा अवसर।"

"अब इस समय यह जो कारवां ठीक ही ठीक जा रहा है, इसे तू कैसे बदलेगा?"

"मैं बदल दूगा। मेरे भीतर से मृत्यु का भय दूर हो गया और मैं उस दर्रे को पाट दूंगा जो इन्हें कश्मीर की सीमा से बाहर निकाल सकता है।"

"कैसे?"

"आगे यह सड़क दो शाखाओं में टूट गयी है, वही पर निर्णय होगा, जीना है या मरना है।"

साथी डरकर कांपने लगा।

बुलन ने हाथ जोड़कर मन ही मन प्रार्थना की, "हे भगवान, मुझे वह शक्ति दो कि मैं कठिन से कठिन मार्ग पर चलूं जहां से इस पापी हत्यारे और इसके सारे काफिले को बर्फ के उस चक्कर में ऐसे फंस जाना पड़े कि वहां से ये बाहर निकल ही न सकें।"

उसका साथी फिर कहने लगा, "क्यों रे बुलन, क्या तय कर रहा है?"

"हां, तय कर लिया। क्या घुल-घुलकर रत्ती-रत्ती की मौत ठीक है या एक ही क्षण की!"

"मैंने फैसला तेरे ही ऊपर छोड़ा। पर तू अब रास्ता बदलने की कैसे कहेगा?"

"हम दोनों ही तो इन कारवां की आंखें होकर चल रहे हैं। इसीलिए तो हमारा बोझ हलका कर दिया गया है और हमपर कोड़ों की मार रोक दी गयी है। पर मैं तुझसे कहता हूं, क्या तू अभी तक मरने के लिए तैयार नहीं हुआ है?"

"तेरे ही साथ चल रहा हूं।"

आकाश मे काले बादल उमड़ उठे और कडकने लगे, और उन्होंने उस अत्याचारी के उत्साह को मिटा दिया। बर्फ का भयानक तूफान सिर पर आ गया। जिनके सिर और पीठ पर भारी-भारी बोझ थे, वे थककर बैठते गये। उनपर कोड़े चलाने वालो के हाथ भी ठड से जकड़कर रह गये। वे भी बैठने लगे। बर्फ मे पैर अब तो घुटने तक धंसने लगे।

जुलकदर खां का घोड़ा भी अब कहा तक आगे बढ़ता। उसका पैर बर्फ मे गड़ा का गड़ा ही रह गया। उसके सवार ने अपनी नगी तलवार हवा मे उठाकर कहा, "कहां है वह शैतान दर्जी का बेटा? वह जरूर जान-बूझकर ही हमे इधर बहका लाया है।"

दूसरे घोड़े पर चढे हुए एक सहकारी ने घोड़ा आगे दौड़ाकर इधर-उधर देखा, फिर कहा, "हुजूर, वह जो शुतरमुर्ग का रगीन झडा हाथ मे लिए आगे-आगे रास्ता दिखाता जा रहा था, उसका कही पता नही है।"

एक बोला, "उसकी पीठ का बोझ हलका कर दिया गया था, यही भूल हो गयी। वह झडा फेंककर अपनी गुलामी तोडकर घर को भाग गया।"

"अरे बेवकूफ, घर को किधर से भाग गया? चारों तरफ बर्फ के पहाड़ मुह खोले खड़े है।"

आगे बहुत बड़ा गड्ढा था जिसको बर्फ ने ढककर बिलकुल मार्ग के समतल कर दिया था। बुलन ने जैसे ही आगे को पैर बढाया वह शुतरमुर्ग के झडे सहित गड़प्प मे उस गड्ढे में अदृश्य हो गया। उसके साथ के कुछ लोगों ने भी उसी तरह हिम-समाधि ले ली। शेष उस झडे को देखकर मार्ग खोजने लगे।

तभी किसीकी पुकार सुनकर एक आक्रामक चिल्लाया, "सामने आ। तू कहा से बोल रहा है? समझ नहीं पडता।"

"मैं गर्दन तक बर्फ की कब्र मे ढक गया हूं। सिर्फ मेरी आवाज ही आपके पास तक आ सकती है।"

इसी समय ऊपर से बहुत बड़ा हिमखड खिसककर नीचे आ गया और उसमें सभी कुछ एकाकार हो गया, लूटने वाले, लूटे गये और लूट का माल—सभी कुछ।

सदल-बल जुलकदर खा की हिम-समाधि बन जाने के बाद भी बहुत

वेश-भूषा सहज ही उन तातारी डाकुओं की दृष्टि खीच लेगी, उसने डर-कर सोचा।

वह झाड़ी मे छिपा-छिपा इसी समस्या को सुलझाने लगा। कुछ देर मे उसे एक कुम्हार उधर से गधों पर मिट्टी के बर्तन ले जाते हुए दिखाई दिया। उसकी सहज गति से उसे यह सबोध हो गया कि उस तरफ आक्रा-मकों का भय नही फैला है। सहदेव के मस्तिष्क मे एक नयी बिजली कौंध गयी। झाड़ी के भीतर मे ही उसने धीरे-धीरे पुकारा, "अरे ओ गधे!"

कुम्हार के ऊपर इसकी कोई प्रतिक्रिया नही उभरी। बहुत संभव था, यह अधूरा संबोधन उसके कानो में गया ही नही। सहदेव ने अपनेको सयत कर फिर कुछ आरोह मे पुकारा, "अरे ओ गधेवाले!"

कुम्हार अचानक उस ओर से आयी आवाज से सहम उठा, "वे डाकू तो इधर नही आ सके थे। सुना तो था, वे कश्मीर के जाड़े से डरकर भाग गये!" उसने उसे भूत-प्रेत की लीला समझा। फिर दूसरी पुकार ने उसका भ्रम तोड दिया। उसने जवाब दिया, "नही, ये बर्तन बिकाऊ नही हैं।"

सहदेव निरतर अपना वेश उतारते जा रहा था। कुछ और ढील देने को उसने कहा, "फिर कहां ले जा रहा है इन्हें?"

"राजा साहब ने मगवाये है।"

सहदेव ने घबराकर पूछा, "कौन राजा साहब?" उसके मन में यह भ्रम जाग उठा था कि कहीं उस जुलचू का तो राजतिलक नही हो गया!

पर उसके प्राण अपनी जगह पर आ गये, जब उसने सुना, "रिंचन, लद्दाख के राजा साहब।"

"अब तो लद्दाख में न जाने किसका राज है। फिर वे किस बात के राजा साहब?"

"तो यही कश्मीर के समझ लो।"

"क्यों, कश्मीर के राजा तो महाराज सहदेव है।"

"जुलकदर खां ने भगा दिया उसे। अरे तुम उसे राजा कहते हो? क्या नही था उसके पास? सेना थी, हथियार थे, अन्न भी था और धन भी।

देशभक्त मंत्री भी मिल सकते थे और स्वामिभक्त सेवक भी, पर राजा ही राजा न रहा।"

सहदेव के हृदय में यह शब्दवेधी बाण घाव कर गया। फिर वह कुम्हार बोला, "हतेरी की! प्रजा को बचाने के बजाय खुद अपनी ही जान बचाकर भाग गया! कैसा बुजदिल! दो मौतें भी क्या किसीको होती है?"

"रिंचन भी क्या लद्दाख से अपनी जान बचाकर ही नहीं भाग आया था?" कायरतापूर्वक तर्क किया सहदेव ने।

"जान बचाकर नहीं भाग आया, अपने साथ तीन सौ सिपाही लेकर वह फिर अब जुलचू का सामना करने के लिए उन्हें कवायद करा रहा है। यह देखो न, ये सैंकड़ों हांडियां और किसलिए ले जा रहा हूं।"

सहदेव ने झाड़ियों की ओट में कपड़े उतार दिये थे, अब वह जेवर खोलने लगा था, "इन हांडियों को दुश्मन के ऊपर फेंककर ही क्या उसका सामना किया जायेगा?"

"नहीं, खेतों में जगह-जगह आदमियों के जितनी ऊंची लाठियां गाड़ दी जावेंगी, उनके ऊपर एक-एक हांडी लटकाकर सिपाहियों का सिर बना दिया जायेगा। उसके आगे महाराजा रिंचन के पांच सौ सिपाही खड़े हो जावेंगे। हांडियों की खोपड़ियां मिलाकर क्या उनकी फौज की गिनती हजारों की न हो जायेगी? दूर ही से यह देखकर क्या वह जुलचू उलटे पैरों भाग न जायेगा!"

"तुम मेरा भी एक काम करो तो हरगिज घाटे में न रहोगे।"

"पर मैं ऐसे परदे का सौदा नहीं करता। सामने आकर बताओ, तुम कौन हो, क्या हो? तुम्हारी शकल देखकर उस बात को परख भी तो लूं।"

"मैं तुम्हारे साथ अपने कपड़े बदल लेना चाहता हूं।"

"बाहर आकर दिखाते क्यों नहीं?"

सहदेव ने अपनी एक रेशमी चादर हाथ में ली और झाड़ी के बीच से निकालकर उसे दिखाई। कुम्हार ने सहदेव का हाथ पकड़कर उसे बाहर

"हां, वही तो मुझे भी जाना है। जब रिंचन की जागीर के नजदीक पहुंच जायेंगे तो मैं अपने महाराजा रूप में आ जाऊंगा और तुम अपने गधे की पीठ पर…"

"मेरा पहना हुआ कपड़ा पहनने वाले तुम कैसे महाराज हो?"

"मेरी गठरी में और भी कपड़े हैं। तुम्हारी इस मदद के लिए तुम्हें कुछ और भी मिल जायेगा।"

"लेकिन महाराज…।"

"चुप रह, महाराजा क्या गधे पर सवारी करता है?"

"तो कपड़ों के साथ मेरा नाम भी ले लोगे? यही सही। तो सुनो, जोखू भाई, डर का असली घर तो इंसान के मन में ही होता है, बाहर बहुत कम।"

"क्या वह जुलचा डरकर भाग गया?"

"तुम्हारी पलटन से डरकर नहीं, कश्मीर के जाड़े से डरकर वह अपनी लूट का सामान बांधने लगा।"

सहदेव के सामने अब एक तंग रास्ता आ गया। कगार पर, नीचे बड़े वेग से गरजती-भागती हुई सोली नदी थी। वह चिल्लाया, "जोखू, डर लगता है।"

"जुलचू शायद अपनी फौज के साथ कश्मीर छोड़कर चला भी गया। फिर अब कैसा डर।"

"नीचे बहती हुई इस नदी की गरज डराती है और यह रास्ता बड़ा संकरा है।"

"मैंने कह तो दिया, डर कहीं बाहर नहीं भीतर ही है। जमे रहो, आंखें बंद कर लो।"

"अभी रिंचन की जागीर कितनी दूर है?"

"हिम्मत वाले के लिए दूरी कोई चीज नहीं। घबराओ नहीं, अब थोड़ी ही दूर चलने पर बिलकुल मैदान की राह आ जायेगी, और रिंचन महाराज के महल का कंगूरा न भी दिखाई दिया तो ऊंचे-ऊंचे देवदारों के ऊपर तानी हुई झंडियां तो जरूर ही दीख जायेंगी।"

"बड़ा तंग रास्ता आ गया जी! मेरे साथ-साथ चलो न। यह गधा

उछलता-बिछलता जा रहा है। कही मैं इसपर से गिरकर नीचे नदी मे जा पड़ा, तो फिर मेरी कोई भी हड्डी साबुत नही रहेगी। अरे क्या नाम है तुम्हारा? जल्दी मे आओ, मैं उतरकर पैदल ही चलूगा।"

जोखू के वहा तक पहुचने पर सहदेव गधे से नीचे उतर गया। वह धरती पर कूदा ही था कि एक रस्सी के टुकडे को साप समझकर, "साप! साप!" चिल्लाया और उस ऊचे कगार पर लुढकता हुआ नीचे वेगवती नदी मे गिर पड़ा।

जोखू सिर पीटकर चिल्लाया, "हे राम!" बडी देर तक वह इधर-उधर दौड़कर नदी मे देखता रहा। मगर कही सहदेव का कोई भी चिह्न नही दिखाई दिया।

सहदेव के उद्धार की अब क्या आशा की जा सकती थी! हा, उसके राजत्व की वह गठरी, उसकी रक्षा हो सकती है। उसके गधे सबके सब आगे बढ़ गये थे। उसने दौड़कर सबसे आगे के गधे के पास जाकर टटोला, गठरी सकुशल थी। उसने गधो को रोक लिया और गठरी को निकालकर जमीन पर खोला। सबसे पहले राजमुकुट की आभा से वह चौंधिया उठा। बरबस उसे अपने माथे पर पहनकर वह चिल्ला उठा, "महाराज सहदेव की जय!"

फिर अपने-आप उसने शंका की, "अब महाराज सहदेव कहां! हत्यारी सोती नदी उन्हे निगल गयी। अब उनकी जय कैसी? तो क्या कहूं? महाराज जोखू की जय!"

उसने मुकुट को सिर पर से उतारकर हाथ में ले लिया, "अरे, यह गधे की सवारी करने वाला क्या हाथी पर बैठ सकता है? यह मिट्टी खोदने वाला कैसे सोने को सिर पर चढ़ा लेगा? फिर लोग तो इसी बात को सच समझेंगे कि जोखू कहीं जंगल में महाराज सहदेव को मारकर उनका राजमुकुट चुरा लाया है।"

उसने राजमुकुट को फिर सावधानी से गठरी में ही बांध लिया और सुरक्षा के लिए उसे गधे पर न लादकर अपने ही कंधे पर संभाल लिया। कुछ देर में मैदानी मार्ग आ गया था। अब गधे ठीक चाल से [illegible]

[illegible] के [illegible] के बहाने और दुर्घटनाएं थी। [illegible]

समतल भूमि थी। उन खेतों में बढ़िया उपज होती थी। इसका एक कारण था—मिट्टी का गुण और दूसरा कारण था—उस घाटी की ऊपरी सतह पर दो नदियों से परिपोषित एक अच्छा-खासा तालाब, श्यामल ताल। वहां से कई गूलें काटकर उन खेतों में सिंचाई होती थी।

खेती के ये बहुत-से उपाय और सुधार, रिंचन और उसके समझदार साथियों की कल्पना से उद्भूत थे। वह अपने साथ बहुमूल्य सोने-चांदी के आभूषण और कुछ अशर्फियां ले आया था। उसकी जागीर के निकट एक तालुकेदार रहता था। वह निस्संतान था। अपनी कोठी और भूमि बेचकर सारा धन उसने धर्मकार्य में लगा दिया। रिंचन ने वह सब संपत्ति अच्छे मूल्य में खरीद ली। और उसकी कोठी को बहुत कुछ घटा-बढ़ाकर अपना निवास बना लिया।

जहां उस तालुकेदार ने अपने नौकर-चाकरों को बसा रखा था, वहां रिंचन ने अपने सेवक सैनिकों को भूमि दे दी, रहने और कमाने-खाने के लिए। रिंचन अपनी बुद्धि और कौशल के बल से कुछ ही दिनों में एक छोटे-मोटे राजा के रूप में दिखाई देने लगा।

मार्ग में चढ़ते-उतरते अब जोखू श्यामल ताल पहुंच गया। गरमियों में कभी उस ताल का पानी श्याम रंग का हो जाता था, या उसमें एक तरफ नीले कमलों की प्रचुरता थी—इसी कारण उसका यह नाम पड़ा था।

उसके एक गधे ने उस तालाब की परिधि की ओर मुंह बढ़ाया तो उसके शेष तीनों जाति-भाइयों ने भी वही किया। वे चारों प्यासे थे।

सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित चार घुड़सवार सिपाही उधर आते दिखाई दिये। वे रिंचन की ही सेना के थे। इसलिए जोखू ने उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

एक ने उसके निकट आकर पूछा, "क्यों रे, तूने हमारा शिकारी कुत्ता कहीं देखा?"

जोखू ने उनके आने से बहुत पहले ही सहदेव की गठरी एक झाड़ी में छिपा दी थी। हाथ जोड़कर कहा, "नहीं देखा।"

दूसरा सिपाही बोला, "एकाएक न जाने क्या सूंघकर भाग गया वह इधर को—अपनी स्वामिभक्ति की अटूट परंपरा को तोड़कर।"

वे चारों उसी ओर अपने-अपने घोड़े दौड़ा ले गये, जिधर से जोखू आ रहा था। जोखू मन मे सोचने लगा, उनके शब्द, 'स्वामिभक्ति तोड़ी उसने या जोड़ी? कुत्ता मीलों से अपने मालिक की गंध पा लेता है। मुझे याद है, वह कुत्ता सहदेव ने ही रिंचन को उपहार में दिया था। वह नदी में उसीको ढूंढने तो नही चला गया?'

जोखू फिर वहा एक क्षण के लिए भी नही रुका। उसने वह छिपा दी गयी गठरी अपनी पीठ पर ली और यह भी चिंता नही की कि उसके गधों ने अपनी प्यास बुझा भी ली है या नही। उसने शहतूत की टहनी दृढतापूर्वक उनकी पिछली टांगों पर सटका दी और उनके साथ रिंचन की कोठी पर पहुंचकर ही दम लिया। .

रिंचन उस समय बुद्ध मंदिर मे प्रतिमा के सामने बैठकर मानी घुमा रहा था, "ॐ मणि पद्मे हुंऽ, ॐ मणि पद्मे हुंऽ।"

वाहर से जोखू मदिर की जजीर झनझनाता हुआ चिल्लाया, "महाराजा रिंचन की जय!"

इस जयघोप ने रिंचन का ध्यान तोड दिया। उसका यह कौन-सा स्वप्न नीद का द्वार खोलकर वास्तव जगत् में खुल आया? उसके हाथ की मानी एक वार उल्टी घूम गयी। किसी अनिष्ट की आशंका से उसका माथा चकराने लगा।

तीन वार मानी को सिर के चारों ओर घुमाकर वह जोर-जोर से जपता रहा, "बुद्ध शरण गच्छामि, धर्म शरण गच्छामि, सघं शरण गच्छामि।' उसने कांपते हुए हाथों मे मानी बुद्ध की वेदी पर रख दी।

रोप में भरा वह वाहर आया तो देखा, एक कपड़ों की गठरी लिए जोखू कुम्हार खडा है, बुद्ध-मंदिर की सबसे नीचे की सीढ़ी पर; जिसको छूने का भी प्रत्येक को अधिकार नही था। उसने फिर रिंचन का जयघोप किया। इस अतिप्रिय अनहोनी का भी रिंचन विश्वास क्यों करे!

फिर भी उसने जोखू को सीढी से नीचे उतर जाने का सकेत कर पुकारा, "प्रहरी!"

प्रहरी हाथ जोड़ दौड़ता हुआ आया, "हुजूर, मैंने इससे कितना ही कहा कि महाराज पूजा में बैठे हैं। बिना उनसे पूछे मदिर की सीढ़ियों पर

चढ जाना भी पाप है, पर यह माना ही नही।"

"यह तुझे दस कोड़े लगावेगा, क्योंकि तूने मेरी आज्ञा तोड़ी और फिर तू इसके कसूर के लिए इसपर एक सौ कोड़े लगावेगा।"

"लेकिन सरकार, इसने मुझे एक सूरज दिखा दिया, जिसने आपकी आज्ञा ही भुला दी।"

कुछ विस्मय और कौतूहल मे पड़कर रिंचन ने कहा, "तेरी बात समझ मे नही आयी।"

"जोखू, समझा दे, नही तो दस कोड़ो की मार से मैं तो बच ही जाऊंगा, शायद तू भी···।"

और जोखू फिर निडर होकर खटाखट सातों सीढियो का अतिक्रमण कर रिंचन के ही धरातल पर चढ़ गया और राजमुकुट निकालकर रिंचन के सिर पर रख दिया। फिर उसके पैर छू नीचे उतर गया और प्रहरी के भी दोनो हाथ ऊपर कर दोनो चिल्लाये, "महाराज रिंचन की जय!"

निकट के कुछ लोग जो खेतो मे काम कर रहे थे, अस्त्र-शस्त्र और कवचो का जीर्णोद्धार कर रहे थे, सब अपना अपना काम छोड वही पर आ पहुंचे।

रिंचन के राजमुकुट को दिखाकर जोखू बोला, "तुम सब भी एक आवाज मे पुकारो!" सबने जयघोष किया।

"महाराज रिंचन की जय!"

अब तो रिंचन का सारा क्रोध अस्त हो गया। उसने एक सीढी नीचे उतरकर पूछा, "क्या वह जुलचू कश्मीर को लूटकर चला गया?"

किसीने उत्तर मे कहा, "हां, सब लोग यही कहते है।"

उसने सिर का मुकुट उतारकर हाथ मे लिया। उसकी आखों में उसका प्रकाश प्रवेश कर गया। उसने एक सीढी और नीचे उतरकर पूछा, "यह राजमुकुट किसका है?"

"महाराज महदेव ने आपके लिए भेजा है।"

"वे कहां है?"

"यह सबसे अंत में बताऊगा। पहले उनका सदेश तो सुन लीजिये। उन्होंने कहा, जो राजा प्रजा को बिना खिलाये खुद खा लेता है, उसकी

रक्षा किये बिना स्वयं शरणार्थी बन जाता है, हिम की रात में प्रजा को ठंडे पत्थरों पर सुलाकर स्वयं रंग-शय्या पर विलास करता है उस राजा को एक दिन अपने पाप का प्रायश्चित्त अवश्य करना पड़ता है। इसलिए उन्होंने इस राजमुकुट की धरोहर को उतारकर प्रायश्चित्त कर लिया। क्या आप इसे स्थिर रख सकेंगे ?"

"क्या उस जुलचू ने उन्हें भी मार डाला ?" पूछते हुए रिंचन फिर एक सीढ़ी और नीचे उतर गया।

"इसी राजमुकुट को बचाने के लिए उन्होंने राजभवन और रनिवास सभीका लालच छोड़ दिया।"

"क्या कोटारानी को भी ?" रिंचन ने चौथी सीढ़ी भी छोड़ दी।

"यह मुझे ज्ञात नहीं। पर वे अकेले ही थे।"

रिंचन फिर एक सीढ़ी और नीचे उतर आया, "अगर वह मेरे साथ··· हां, मैं इस राजमुकुट को स्थिर कैसे रख सकूंगा ?"

"पढ़े-लिखे और अपढ़ की, अमीर और गरीब की, गोरे और काले के बीच की दोस्ती समझकर···"

"महाराज सहदेव कहां हैं ?" सातवीं सीढ़ी पर उतरकर रिंचन ने जोखू से पूछा।

"उन्होंने सोली नदी में कूद आत्महत्या कर ली।"

जब उस आततायी के कश्मीर छोड़कर चले जाने का समाचार सर्वत्र फैल गया तो रामचंद्र को सहदेव का कुशल समाचार प्राप्त करने की बड़ी चिंता हो गयी। किसीने उसको यह भी सुझा दिया कि वे हरिपर्वत को निरापद समझकर वहां न चले गये हों।

पर यह संभावना भी तब टूट गयी, जब हरिपर्वत पर भेजे गये दूत ने लौटकर कहा, "नहीं, महाराज सहदेव वहां भी नहीं हैं।"

बहुत समय तक यह भी समझा जाता रहा कि जुलकदर खां उन्हें बंदी

बनाकर ले गया, पर जब सियात के पहाड़ों पर सेना-सहित उसके विनष्ट हो जाने की खबर फैल गयी, तो यह सभावना भी जाती रही।

अत में रिंचन की छावनी से यह अधूरा सत्य विस्तारित हुआ कि उन्होंने सोली नदी के ऊचे कगार से कूदकर आत्महत्या कर ली। पर रामचद्र ने इस बात का विश्वास नही किया कि वह जन्म का कायर, उतनी ऊचाई से अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे सकता है।

फिर एक दिन रामचंद्र के भाई रावणचद्र ने इस समाचार को पुष्ट कर दिया। उसने एक दूसरा साक्ष्य देते हुए कहा, "अत.पुर मे रानियों ने जो लकड़ियां उस आततायी के बलात्कार से बचने के लिए जमाकर रखी थी, वे दूसरी तरह काम आयी।"

रामचंद्र ने पूछा, "तुमसे किसने कहा ?"

"रिंचन ने उनके वस्त्राभूषण दिखाकर रानियों के सामने उनकी अंतिम इच्छा को खोल दिया। राजमुकुट और आभूषण उसने स्वयं पहन लिए और वस्त्र रानियो को दे दिये। वे उन्हे आपस में बांट एक-एक टुकडा गोद में रख सती हो गईं।"

"अरे रे ! वह बौद्ध जो शरण खोजते हुए यहा आया था, कैसे कश्मीर का अधिपति बन जायेगा ? उसे जागीर दिलाने मे मैंने ही मदद की थी, और आज वह मेरा ही प्रतिद्वद्वी !"

रावणचंद्र बोला, "एक तीसरा भी तो अपना प्रभाव बढाता जा रहा है।"

"क्या तुम्हारा मतलब शाहमीर से है ? राज्य की नौकरी दिलाने मे मैंने उसकी भा मदद की थी। अपनी उदार वृत्ति से कुछ ही समय में वह मंत्री पद तक पहुंच गया। पर इस राजसत्ता ने किसकी मति में अंतर नहीं डाल दिया !"

"कुछ समय तक उसने प्राणप्रण से नगर की रक्षा की।"

रामचंद्र बोला, "हा, मुझे उसकी योग्यता का विश्वास था। मैंने उसे तीन हजार सैनिकों का सचालन देकर नगर के दक्षिणी द्वार की रक्षा सौंप दी। वह मुझसे बोला, वह तातार साठ हजार सेना लेकर आ रहा है,' यह सिर्फ हमारा मनोबल तोड़ देने की अफवाह फैलाई गयी थी। मैंने

उसका साहस बढाने को अस्त्र-शस्त्र और सेना के साथ उसे प्रधानमंत्री पद तक पहुचा देने का वचन दिया था। जुलचू अपनी ही कठिनाई से पराजित होकर भागा। और यह शाहमीर, मेरे ही टुकड़ो से पला, मेरा ही विरोधी बन गया।"

"बहुत-से मुसलमान उसकी सेना मे थे ही। कुछ हिंदुओं को भी उसने बड़ी-बड़ी आशाएं देकर अपना साथी बना लिया।"

फिर तो कुछ समय बाद कश्मीर के राजसिंहासन पर आक्रमण करने के लिए ये तीनो खुले आम तैयारी करने लगे। पहला था रामचद्र, दूसरा शाहमीर, तीसरा रिंचन। यह बौद्ध अपनेको उस हिंदू और मुसलमान के बीच का उपयुक्त समझौता समझता था। पिछली तीन सदियो के दौरान विषयी-लपट राजाओ के पाप से त्रस्त कश्मीर की पवित्र भूमि के उद्धार के लिए, वह अपनेको भगवान का भेजा हुआ त्राता समझता था।

जोखू कुम्हार, जिसने रिंचन को बिना युद्ध-विग्रह के ही कश्मीर का राजेश्वर बना दिया था, ऋणमोचन के लिए राजा के अगरक्षकों में शामिल कर लिया गया। अच्छे वेतन के साथ उसे एक दोमजिली कोठी भी रहने को दी गयी। नीचे के गोठ में जोखू ने उस गधे को भी वही प्रतिष्ठा दी, जो रिंचन के द्वारा उसे दी गयी थी।

जाड़े से बचाने के लिए उसकी पीठ पर बढिया पशमीना बाधा जाता। अब उसे कही कोई बोझ नही ढोना था। खाना वह जोखू की रसोई का ही खाता।

जोखू समझता था, उस गधे के कारण ही उसके नक्षत्र चमके हैं। न वह कुम्हार होता, न ही सहदेव उसके साथ कपड़े बदल उस गधे पर सवार होता। कभी-कभी वह यह भी समझने लगा था कि उस गधे की लात खाकर ही वह नीचे गिरा, क्योंकि उस गधे ने उसकी नालायकी समझ ली थी। यह सब भगवान की ही लीला थी।

जोखू रोज सुबह-शाम उस गधे की आरती उतारता, नैवेद्य और फूल चढाता और साष्टाग दडवत् भी करता। लेकिन यह पूजा छिपती कहां तक? उसके चाकर को यह रहस्य ज्ञात हो ही गया। उसने एक से कहा उसने दूसरे-तीसरे से। अत में गधे की पूजा की चर्चा रिंचन की [illegible]

सत में फैल गयी।

रिंचन भी तो मदिर मे धूप-दीप-नैवेद्य से बुद्ध की प्रतिमा की पूजा करता और मानी घुमाता था। जोखू की पूजा की सभी लोग हंसी उड़ाते। वह अपने गधे से कुछ भी नही मागता था, लेकिन रिंचन अपने देवता से कश्मीर का राजसिंहासन तो मागता ही था, अपनी शय्या के लिए कोटा-रानी का सयोग भी चाहता था। किसकी पूजा बड़ी है?

उस दिन भी रिंचन बुद्ध के मदिर में बैठा हुआ मानी घुमा रहा था कि रामचद्र का भेजा हुआ दूत रावणचद्र आ पहुंचा। पहरे पर सेवक ने कहा, "महाराज तो पूजा में है।"

"महाराज?" बड़े आश्चर्य से रामचद्र के भाई ने पूछा।

"हा, महाराज ही तो! तुम्हें मालूम नही है? कश्मीर के विगत महाराज अपना राजमुकुट, हीरे-मोती की मालाए, जरी का चोगा और बहुत-से आभूषण उन्हें समर्पित कर गये है। सिर्फ एक रेशम की चादर उन्होंने जोखू को दी थी, भाड़े के रूप मे।"

"अच्छा ऽ!" रावणचंद्र के मुख से एक ठडी सांस निकल गयी।

"क्या तुम यही जांचने को आये हो?"

"पर जब वह सर्वनाशी जुलचू कश्मीर की राजधानी का विध्वंस कर गया, तब यह महाराज कहां थे?"

"तब इनका तिलक नही हुआ था, पर इन्होने उसका सामना करने की पूरी तैयारी कर रखी थी। उसे इधर पैर बढ़ाने का साहस ही नही हुआ। और उस समय सहदेव सोली नदी के किनारे-किनारे छिपते रहे; और फिर वे महाराज रिंचन को अपना राजमुकुट सौंपकर इस ससार के चक्र से ही निकलकर चल दिये।"

"अच्छा, कश्मीर का राजमुकुट तो जिसका है, उसीका होगा, अभी तो कश्मीर एक क्षत-विक्षत लोहू-लुहान प्राणी की भांति है। सबसे पहले उसे सजीवित किया जाये, तभी तो कोई उसका स्वामी बनेगा। मेरे भाई ने मेरे मार्फत कुछ प्रस्ताव भेजे है, जिनसे जुलचू जो विध्वस कर गया है, उसका निर्माण हो और आगे के लिए राज्य का सुसंचालन और प्रजा का पालन हो। सेना सुसगठित हो, किसान निर्भय होकर कृषि-उत्पादन करें

और व्यापारी उसका धर्मपूर्वक बटवारा। उन्हे बुला दो, इससे बढकर इस समय और दूसरी पूजा ही क्या है ?"

"नही, उन्हें कोई विघ्न नही दिया जा सकता। पूजा की पूर्ति पर वे स्वय ही आ पहुंचते है। तुम्हें कुछ ही देर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अब उनके आने का समय हो गया।"

"तब तक मैं तुम्हारी छावनी में घूमकर सेना की गतिविधिया देख आता हूं।"

"नही, यहीं चुपचाप बैठे रहो। महाराज की आज्ञा नही है कि कोई बाहरी मनुष्य हमारी छावनी का भेद मालूम कर ले जाये।"

"अरे, तुम लद्दाखी यहा कश्मीर के भीतरी हो गये और हम बाहरी ! बड़ा अजीब न्याय है यह।"

"कोई कही का नही है। जो जहा जम जाये, वही का है। यहा तक भी हर एक को आने की आज्ञा नही है। तभी तो मैने बाहरी फाटक पर तुम्हारी अच्छी तरह नंगाझोरी ले ली थी कि कही तुमने अपने कपड़ों के भीतर कोई हथियार तो नही छिपा रखा है ?"

रावणचंद्र ने फिर विवशता की सास ली और उठकर इधर-उधर देखने लगा। प्रहरी ने फिर उससे बैठ जाने को कहा, "दूत क्या गुप्तचर होकर आता है ? सीधे होकर बैठ जाओ, अधिक चचलता दिखाना उचित नही। राजाओ की सनक बडी भयानक होती है, उसे नीति का नाम देकर उसकी सराहना होनी चाहिए।"

"वह विदेशी लुटेरा हमारे देश की दुर्दशा कर गया, नगर और गावों को खडहर बना गया, प्रजा को नगा कर गया, मार गया और बदी बनाकर ले गया। लोगों के अनाज का भडार खुद खा गया और उनकी खेती, उनके जानवर उजाड़ गया। और जाते-जाते वह राज्य के भीतर गृहयुद्ध की स्थिति पैदा कर गया।"

"तुम्हारी ये सभी बाते ठीक है। लेकिन महाराज की हत्या उन्होंने नही की। देश की दुर्दशा देख उन्होने स्वयं ही आत्महत्या कर ली।"

"यह बिल्कुल झूठी बात फैला दी गयी है।"

रिंचन को पूजा-घर से निकलकर आता देख प्रहरी ने हाथ का भाला

ऊंचा किया और चिल्लाया, "महाराज रिंचन की जय !"

रावणचंद्र भी उठकर खड़ा हो गया।

दूर ही से रिंचन बोला, "कहो रावणचंद्र, कुशल तो हो? और तुम्हारे भाई? हम तो समझे थे कि तुम लोगों ने ही आक्रामक का सामना कर उसे भगा दिया।"

"यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं था क्या? तीन व्यक्ति जो आज कश्मीर के सिंहासन के लिए लड़ रहे हैं, क्या वे उस विदेशी से लोहा लेने को हाथ नहीं मिला सकते थे?"

"तुम्हारी यह शंका अपने-आप मिट जायेगी। चलो मेरे महल में।" वह रावणचंद्र का हाथ पकड़कर अपनी में बैठक ले गया। उसके संकेत पर दास-दासियों ने उसके स्वागत-सत्कार में कोई कसर नहीं रखी।

रिंचन अवकाश निकालकर भीतर चला गया। रावणचंद्र के मनोरंजन के लिए वहां एक नर्तकी नाचने-गाने लगी, पर उसके मन का विक्षोभ नहीं गया।

रावणचंद्र अनखाकर उठ खड़ा हो गया, "नहीं, मैं गीत सुनने के लिए नहीं आया हूं। कश्मीर की यह भयानक संकटापन्न अवस्था क्या नृत्य और गीत से सुमधुर की जा सकती है? मेरा उन्हीं से काम है, वे कहां चले गये? उन्हें बुला दो।"

बाहर पहले ही नियुक्त कर दी गयी भीड़ चिल्लाई, "महाराज रिंचन की जय!"

रिंचन सहदेव के वस्त्राभूषण और राजमुकुट पहनकर आ पहुंचा और बोला, "लो पहचानो मुझे, मैं कौन हूं?"

रावणचंद्र स्तंभित होकर खड़ा रह गया।

रिंचन फिर उसके और निकट आकर बोला, "क्या तुम मेरे धारण किये इस राजमुकुट और वस्त्राभरणों में कश्मीर के महाराज की सानुरूपता नहीं पाते? क्या विगत महाराज के किसी लेख से ही मेरा उत्तराधिकार सिद्ध होता? क्या यह वेश उसका साक्षी नहीं?"

रावणचंद्र ने शिला-मौन धारण कर रिंचन को फिर सिर से पैर तक देखा।

"क्या देख रहे हो ? क्या मैं किसी छल-प्रपंच से उनके प्रतिबिंब में अवतरित हो गया ? क्या मेरे सिर पर का राजमुकुट, मेरे अंग पर का यह चोगा, गले में पहनी मालाएं, भुजाओं पर के भुजबंद, कंकण और कटि में बंधी रत्नजटित सुवर्ण-मेखला उन्हींकी नहीं है ?"

"हैं तो सही, पर क्या उनको मारकर इनपर अधिकार नहीं किया जा सकता ?"

"बुद्धं शरणं गच्छामि ! उस कुम्हार की क्या यह हिम्मत हो सकती है ! यदि उसने यह पाप किया होता तो क्या वह इन आभूषणों को मुझे सौंपने आता ? मेरे भीतर इन आभूषणों का कोई लालच नहीं है। महाराज सहदेव ने इन आभूषणों के साथ मेरे लिए जो संदेश भेजा है, वह मेरे लिए बड़ा कठिन है। मैं निरंतर भगवान से उसकी पूर्ति की प्रार्थना कर रहा हूं।"

"उन्होंने क्या संदेश भेजा ?"

"यही कि उस जुलचू को समर में पराजित कर, उसने जो कश्मीर की क्षति की है उसका पुनर्निर्माण। उस आक्रामक को प्रकृति ने हिम-समाधि दे दी। अब मेरा काम केवल एक ही रह गया है, कश्मीर का पुनर्निर्माण !"

रायणचंद्र ने अपनी ही बात शुरू की, "मेरे भाई ने तुम्हारे पास संदेश भेजा है कि तुम्हें यहां जागीर दिलाने में उन्होंने ही पूरी मदद की थी और अब तुम्हें उनसे कोई शत्रुता नहीं रखनी चाहिए।"

रिंचन अपनी वेश-भूषा को दिखाकर बोला, "भगवान की रची हुई इस लीला को समझ लेने में उन्हें देर नहीं लगेगी। अब इस जागीर का मोल भूल जाओ, मैं इसे किसीपर भी न्योंछावर कर दूंगा। मैं तो अब सारे कश्मीर का स्वामी हूं। तुम्हारे भाई कश्मीर के हितचिंतक हैं। मैं उनके साथ क्यों शत्रुता रखूंगा ! महाराज सहदेव ने उन्हें राज्य में जो ऊंचे पद दिये हैं, वे बिल्कुल अपनी ही जगह पर रहेंगे। यह बड़े हर्ष की बात होगी कि हम दोनों एक मन-प्राण होकर कश्मीर को फिर उसी चोटी पर पहुंचा देंगे, जहां पर महान प्रतापी ललितादित्य ने इसे चमकाया था।"

"पर आप उन्हींकी बात को कुछ उलटकर कह रहे है। प्रधानमंत्री और सेनापति के पद तो उन्होंने आप ही के लिए सुरक्षित रखे है।"

"लेकिन यह महाराज का मुकुट और अलंकार, जो मुझे उन्हींकी अंतिम इच्छा से मिले है, इन्हें दूसरा कोई छीन ले जाये, क्या यह उनकी आत्मा पर कुठाराघात न होगा?"

"क्या उनके बाद का दरजा आपको मान्य है?"

"मान लूगा।"

"यदि आपको महाराज सहदेव के मुकुट और आभूषणो का मोल दूने-तिगुने मे चुका दिया जाये तो आप इनसे विलग होने के लिए तैयार हो जायेंगे?"

"एक चीज नाम है, एक चीज रूप है। क्या इन दोनों मे आधे-आधे का समझौता है?"

"मै अपने भाई से जाकर क्या कह दू?"

"कह दो, मैं प्रधानमत्री और प्रधान सेनापति का भार वहन करने के लिए तैयार हू। तुम्हारे भाई रामचंद्र ही कश्मीर के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हो जायें। नाम उन्हींका रहे, पर मैं महाराज के हाथ से प्राप्त उनका यह रूप उन्हें लौटा देने को तैयार नही हूं। देश के कल्याण के लिए उन्हे यह समझौता मान लेना चाहिए।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हारी इस उदार भावना को समर्थन देकर अपने भाई को इस बात के लिए राजी कर लूंगा कि वेश से नहीं, मन से ही प्रभुता प्राप्त होती है।" रावणचद्र जाने के लिए उठ गया।

रिंचन उसके साथ ही साथ कुछ दूर तक बाहर को चला। फिर उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "हा बधु, एक बात और है, यदि वह पूरी कर दी जाये तो मुझे सहदेव के इस राजवेश का भी कोई लालच नहीं।"

रावणचंद्र बहुत प्रसन्न होकर कहने लगा, "अच्छा, तुम यह राज-मुकुट और सारे वस्त्राभूषण मेरे भाई को कितने मूल्य मे बेच दोगे?"

"नहीं, जडता के बदले जडता न दी जायेगी।"

"फिर?"

"उसका मोल चेतना से।"

"क्या ?"

"अर्थात् अगर कोटारानी को मेरे साथ विवाह कर लेने को राजी कर लिया जाये, तो···।"

रावणचंद्र कुछ देर तक इस सोच में पड़ गया। वह जानता था कि कोटारानी से उनका कोई रिश्ता नहीं है। एक ओर कोटारानी का अप्रतिम सौंदर्य और दूसरी ओर रामचंद्र के हाथ में आने वाली कश्मीर की सर्वोच्च सत्ता ! यदि उसने उस कच्चे धागे को तोड़ दिया तो···?

"इतनी गहराई तक तुम क्यों सोचने लगे ? वह तो तुम्हारे रिश्ते की है।"

"मैं चेष्टा करूंगा।"

"तब तुम्हारी इस चेष्टा पर ही कश्मीर में नया सूर्योदय हो सकेगा।"

रामचंद्र अपने भाई को सफल हो लौटा पाकर बहुत प्रसन्न हो उठा, "मैं तुम्हारी नीतिज्ञता की सस्तुति करता हूं।"

"चोर का साहस ही कितना ! उसने अवश्य महाराज सहदेव को असहाय पाकर उनकी हत्या करा दी और उनके सारे राजवेश पर अधिकार कर लिया होगा।"

"इतने ही से क्या उसे कश्मीर का सम्राट् बन जाने की सामर्थ्य प्राप्त हो गयी ! फिर तुमने कैसे उसके इस साहस पर चोट दी ?"

"मैंने उसे महाराज के राजमुकुट और आभूषणों का कई गुना मूल्य देने तथा कश्मीर का प्रधानमंत्री पद और सेनापतित्व देने का प्रस्ताव उसके सामने रख दिया। इसपर वह महाराज की पदवी तो आपके लिए छोड़ने को तैयार हो गया, पर उस राजवेश का मोह नहीं त्याग सका।"

"यह उसकी कूट चाल जान पड़ती है।"

"नहीं, मैंने फिर उसे महाराज का सारा सुवर्ण लौटा देने को विवश कर दिया।"

"क्या उसका चौगुना-पचगुना मूल्य देकर ?"

"नहीं, कुछ भी नहीं।"

"कुछ भी नहीं ? तब तो उसका यह त्याग सराहनीय है !"

"यदि कोटारानी को उसके साथ विवाह कर लेने को राजी कर दिया जाये···।"

रामचंद्र के मुख पर विषाद की कालिमा छा गयी। उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकल सका।

रावणचंद्र ने भाई के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "पर भाई, क्यों आप उसके मोह मे पड़ गये ? आप तो उसे अपनी बेटी प्रसिद्ध कर चुके है।"

"बेटी नही भतीजी। पर मैं उसका चाचा कहां हू। केवल गढ़ लिया गया असत्य है यह तो।"

"पर अब वह सत्य बनकर फैल चुका है। यदि आप उसको काट देंगे तो जनता मे आपकी अशुद्ध छवि फैल जायेगी, जिससे आप कश्मीर के राजसिंहासन पर स्थिर होकर नहीं बैठ सकेंगे।"

"पर उसके मानस में कश्मीर की महारानी बन जाने की ज्वलंत लालसा है।"

"उसकी यह लालसा मिटा दी जायेगी।"

"पर क्या वह हिंदू नारी एक विधर्मी से विवाह करने को राजी हो जायेगी ?"

"उसका मन तोल तो लें। देखें वह क्या कहती है। रिंचन को जब आप प्रधानमंत्रीत्व प्रदान कर ही रहे है तो क्यों नहीं उसका व्यक्तित्व कोटारानी के आकर्षण का कारण हो जायेगा ?"

रामचंद्र ने उसी समय कोटारानी के समक्ष जाकर इस प्रस्ताव को रखा तो वह तीखी होकर उठ गयी, "क्या कहते हो तुम यह ?"

रामचंद्र ने संयत होकर कहा, "विवाह की वितृष्णा से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियो का पूरा विकास नहीं होने पाता।

पुरुष के लिए नारी और नारी के लिए पुरुष का संयोग एक अत्यंत आवश्यक कर्त्तव्य है।"

"तो क्या मैं उस म्लेच्छ के साथ अपना संबंध जोड़ लू?"

"वह म्लेच्छ कैसा? बौद्ध धर्म हिंदू धर्म का ही एक अंग है। उसके प्रवर्तक महात्मा बुद्ध क्या हमारे ही देश के सुपुत्र नही थे? सत्य, अहिंसा, करुणा और शांति का वह धर्म, उसे म्लेच्छ की संज्ञा क्यों देती हो?"

"वह ब्रह्मा, विष्णु, शकर को नही मानता, दुर्गा को नही मानता, फिर मै दुर्गा कैसे बन सकूगी?"

"पुराण तो मात्र कल्पना है।"

"वह वेदो को भी नही मानता।"

"यदि तुम उससे विवाह कर लोगी तो क्यों नही वह तुम्हारी बहुत-सी मान्यताएं अपने मन मे छाप लेगा? देश के लिए तुम्हें अपनी भावना का यह बलिदान करना ही चाहिए।"

"देश के लिए कैसा?"

"एक भारतीय नारी से जब वह विवाह कर लेगा तो उसे हमारे देश मे प्रेम होना आवश्यक हो जायेगा। फिर उसका मेरे विचारों से भी मेल हो जायेगा और हम दोनों शाहमीर का सामना कर ेंगे और वह अपनी ऊंची आकांक्षाओं मे पराजित होकर बैठ जायेगा।"

कोटारानी राजी नही हुई, "नही, यह मेरे धर्म के अनुकूल नही है।"

"अच्छा एक बात है, यदि वह अपना धर्म परिवर्तित कर हिंदू हो जावे तो क्या तुम मान जाओगी?"

"हां, यह भी एक उपाय है।"

"उन बर्बरों ने हमारे देश की संस्कृति-सभ्यता,धन-धान्य, सुख-शांति सभी कुछ मिट्टी में मिला दिया। उसको फिर उर्वरित करना है। तुम्हारी समझ मे उसके पुनर्निर्माण की बात आ गयी, यह बड़े सौभाग्य की बात है। बौद्धधर्म फिर तो हिंदू धर्म की ही एक शाखा है। मैं अभी उसके पास फिर संदेश भेजता हू कि यदि वह हिंदू धर्म ग्रहण कर लेगा, तो कोटारानी उसकी पत्नी हो जाने को तैयार है।"

रिंचन फिर बुद्ध-मंदिर मे मानो घुमाने चला गया, जब रावणचंद्र

उसे कोटारानी से विवाह की आशा दिलाकर विदा हुआ था। फिर तो उसका मन निरंतर कोटारानी की ही रटना में लगा रह गया। शयन में उसके स्वप्नों में वह सजीव हो उठती और जागृति में उसके ध्यान में घिर आती।

उसने एक चाकर गगनगिरि के मार्ग की ओर भेज दिया कि रामचंद्र का संदेश लेकर जो भी आवे, उसे फौरन ही उसकी सन्निधि प्राप्त हो।

मानी घूम रही थी अपनी दिशा में पर होंठों के मंत्र की मणि न जाने कहां चमक रही थी। उसकी आंखें बुद्ध की मूर्ति में कोटारानी की परछाईं देख रही थी, और उसके कान हर क्षण की धड़कन के साथ बंद द्वार पर भटक रहे थे।

क्षणों में उसे घड़ियां बीतती हुई जान पड़ी, "अभी तक कोई नहीं आया। आज दूसरा दिन हो गया। क्यों वह इस परधर्मी की शय्या को छूना पाप समझती है ?"

अब उसकी दृष्टि धर्मचक्र प्रवर्तन की मुद्रा में स्थित बुद्ध की प्रतिमा पर पड़ी, "क्यों देव, तुम हिंदू के घर में जन्म पाकर भी हिंदू क्यों नहीं रहे ? क्या तुमने जनता को असत्य, हिंसा और छल-प्रपंच में भाग लेना सिखाया ? फिर धर्म क्या है ? हिंदू जो कुछ करता है, क्या वही धर्म है ? और बौद्ध के सारे क्रिया-कलाप क्या धर्म नहीं है?"

उसके हाथ की मानी रुक गयी। दरवाजे पर किसीकी हथेली पड़ी। भीतर से आज साकल नहीं लगाई गयी थी। द्वार खुल पड़ा। रिंचन ने मानी को ठीक जगह पर भी नहीं रखा और जल्दी से उठकर उस आगंतुक के साथ बाहर चला आया, "क्या समाचार है ?"

"हां, गगनगिरि का वह संदेशवाहक आया तो है। उसे यहीं भेज दें ?"

"अवश्य, पर उसके साथ दूसरे किसीको आने की आवश्यकता नहीं।"

रिंचन ने उसे मंदिर के भीतर ले जाकर द्वार ढक दिये, "क्या समाचार लाये हो ?"

"महाराज ने कहा है, यदि आप हिंदू हो जायें तो आपकी इच्छा पूरी कर दी जा सकती है।"

रिंचन ने बुद्ध की प्रतिमा की ओर अगुली उठाकर कहा, "हिंदू कैसा मनुष्य होता है ? क्या उसकी आखे जहां पर मेरी है, उससे किसी दूसरी जगह पर होती है ? क्या वह कान से बोलता और मुंह से सुनता है ? क्या इस धर्म का जनक अपनी विवाहिता नारी को असहाय छोड़कर भाग गया ? क्या इसीलिए नारी के लिए बौद्धधर्म त्याज्य है ?"

"आप अपना अभिमत कहिये, जिसे मैं उनके पास तक पहुंचा दू। तर्क छोड़कर केवल एक ही अक्षर मे —'हा' या 'ना'।"

"मुझे हिंदू बन जाने के लिए क्या करना पड़ेगा ? क्षितिज के चक्कर में घुमाई जाने वाली इस मानी के बदले आकाश-पाताल को सरकने वाली माला का सहारा पकड़ना होगा क्या ? माथे पर तिलक, सिर पर चोटी और गले मे यज्ञसूत्र पहनकर ही हिंदू बना जा सकता है क्या ? क्यों ?"

"यह तो मैं कुछ नही जानता।"

"फिर यह बुद्ध की मूर्त्ति कहा जायेगी ?" तभी रिंचन को उसकी कल्पना में एक नाग रेंगता हुआ आता दिखाई दिया। उसने बुद्ध की मूर्त्ति के गले मे होकर दाहिने कधे पर अपना फन फैला दिया।

फिर उसने सुना, "केवल प्रकाश ही प्रकाश। अहिंसा ही अहिंसा। उनको ठहरने के लिए भी तो किसी आधार की अपेक्षा है। क्या प्रकाश का आधार अधकार और अहिंसा का आधार हिंसा नही है? मन एक सूक्ष्म सत्ता है, उसमें प्रकाश नही ठहराया जा सकता बहुत समय तक। अंधकार क्या मन मे अधिक स्थूल शिला है ?"

फिर उसने सदेशवाहक से कह दिया, "हा बधु, मैं हिंदू हो जाऊंगा, कोटारानी तब मेरी हो जायेगी न ! जाओ, मेरे इस निश्चय को जल्दी से जल्दी उनके पास तक पहुंचा दो। समझ गये ?"

"हा, एक-एक अक्षर।"

"जानते हो फिर क्या हो जायेगा ?"

"नही सरकार, बडे आदमियो की बड़ी बातें हमारी समझ मे भला कैसे आ सकती है ?"

"अवश्य आ सकती है। तुम कोटारानी का नाम लेने मे शरमाते क्यो हो ? क्या तुमने उसके दर्शन नही किये है ? वह दुर्गा नगी तलवार लेकर

समर में कूद सकती है। मेरा देवता भी नागधर हो गया। अब हम दोनो ही जब मिलकर कश्मीर की सीमा की चौकसी करने लगें, तो फिर क्या कोई बाहरी डाकू हमारी पवित्र भूमि के सम्मान को खण्डित कर सकेगा? जाओ-जाओ, मैं हिंदू होने को तैयार हूं—जल्दी से जल्दी। अगर तुम पैदल ही आये हो तो हमारी घुड़साल से घोड़ा ले जाओ।"

दूत बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़ सिर नवाकर चल दिया। उसने मूक रहकर ही यह स्पष्ट कर दिया कि वह अपने साथ घोड़ा लाया है।

संदेशवाहक को विदा कर रिंचन अपने शयनकक्ष मे आया। वहा सबसे बड़े दर्पण मे उसने अपने प्रतिबिंब को निहारते हुए सोचा, 'वह बेचारा सहदेव, कोटारानी का हाथ पकड़ने को पागल, उसे रटते-रटते मर गया, पर उस गर्वीली रानी ने कभी जूठे मुख भी उससे कोई बात नही की। उसकी दोनो भौहें जुडी हुई थीं और होंठ अगूठे से भी अधिक मोटे थे तो क्या हुआ? यदि उसमें वीरता होती, यदि उसका खड्ग जुलचू के पैरों को उलट देता तो क्या कोटारानी आज तक कुमारी ही रह जाती? इसी लिए तो वह उसे श्रीनगर लाया था।"

उसने फिर एक दूसरे दर्पण मे देखा। मूछें तो उसकी घनी थी नही वैसे ही उनपर ताव दे उन्हें तीखा किया। वही एक सदूक मे सहदेव का सारा राजवेश बंद था। रिंचन पूजा में काषाय वस्त्र पहनकर गया था। उन्हें खोलते हुए बोला, "राजसभा में क्या ये काषाय वस्त्र पहने जावेंगे? प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग रूप-रंग है। युद्ध की भूमि मे क्या राज-सभा के वस्त्राभूषण पहनकर जावेगा कोई? वहा शिरस्त्राण और लौह कवच की ही उपयोगिता है।"

वह काषाय वस्त्र उठाकर पूजा-घर मे रखने चला गया, "अब इस काषाय वस्त्र की ही क्या आवश्यकता रहेगी। गृहस्थ श्रमणो को बौद्ध-धर्म मे कभी बढ़ावा नही दिया गया है।"

उसने उन वस्त्रो को पूजा-घर की एक मंजूषा में रख दिया। उसमे एक मिट्टी का भिक्षा-पात्र भी पडा था। उसे उठाकर उसने हाथ मे तोला, "अब इस भिक्षा-पात्र की भी जीवन-चर्या समाप्त हो गयी।"

उसने उस पात्र को माथे से लगाकर फिर उसकी जगह पर रख दिया।

कर लो। रात होते ही गगनगिरि पर चढाई कर उस भेड़ों के राजा को बंदी कर हम यहां ले आवेंगे।"

"नही मंत्रिवर, सारा कश्मीर उस नृशंस जुलचू के पदाघात से क्षत-विक्षत है, इस समय युद्ध की तुरही बजाना ठीक नही। रामचंद्र ने मेरी ओर मित्रता का हाथ बढाया है। हमें कश्मीर की शांति भंग करना उचित नही।"

"फिर क्या सोचा है ?"

"हमें नीति से काम लेना होगा। रामचद्र के साथ जो एक महिला है, वह बड़ी विलक्षण है। वह रूप-गुण में जितनी सुंदर है, रणचातुरी में भी वैसी ही अनुपम।"

"फिर तुम किस नीति से काम लोगे ?"

"नीति कहती है कि मैं उस नारी को विवाह-बधन में बाधकर अपने पक्ष में कर लू।'

"वह हिंदू और तुम बौद्ध, क्या वह राजी हो जायेगी ?"

"मत्री महोदय, एक बार जब मैं उसके द्वार पर भिक्षा मागने गया था, तब मुझे भीख देने से पहले उसने जो कुछ कहा था, वह मैं अभी तक नही भूला हू।"

'तो क्या वह अपने धर्म के घमड को भूल गयी है ?"

"अजी, हमारे सभी लद्दाखी सैनिकों-सेवकों के साथ क्या कोई भी नारी यहा आयी थी ? फिर आज सभीके डेरों में छोटे-छोटे बच्चों की चहल-पहल कैसे हो गयी ? इसी बात के लिए तो मैं कहता हू।"

"तो अगर वह सहमत है तो कर लो विवाह। मैं तो अब बहुत बूढा हो गया, तुम दोनों को केवल आशीर्वाद दे सकता हूं।"

"पर एक ही समस्या है। मुझे हिंदू हो जाना पडेगा।"

"नही, औरत के लिए धर्म नही छोड़ा जाता।"

"फिर आप कैसे राजनीतिज्ञ है ?"

"तुमने क्या सोचा है ?"

"यही कि मैं बाहर वेश मे हिंदू हो जाऊं, पर मन के भीतर बौद्ध ही बना रहूं। बुद्धं शरणं गच्छामि।"

"भाई, धर्म तो सभी समान हैं। हिंदू धर्म की भी रीढ सत्य और अहिंसा पर ही ठहरी हुई है और बौद्धधर्म मे भी यही सार वस्तु है। केवल उनके समर्थकों ने बाहरी पाखंड मे भिन्नता उपजाकर अपना अहकार बढाया है।"

"लोगों के अज्ञान से ही धार्मिक असहिष्णुता बढ़ी है।"

"पर यह तो बताओ, वह महिला तुम्हे दे देने पर क्या रामचंद्र तुम्हें कश्मीर का राज्य भी सौंप देगा ?"

"अभी तो वह मुझे इस राजमुकुट के बदले प्रधानमत्री का पद ही दे रहा है। यदि वह नारी मेरी हो गयी तो फिर सारे कश्मीर को ले लेना मेरे ही कौशल की बात हो जायेगी। आपके आशीर्वाद का भिखारी रहूंगा।"

"वह तो तुम्हारा है ही। सुना है, वह महिला कहती है कि महारानी बनने के लिए ही उसका जन्म हुआ है।"

"पर हिंदू बन जाने के लिए मुझे न जाने क्या-क्या करना पड़े ?"

"हमारी छावनी के निकट ही एक पडितों का गाव है। वहा से किसी-को बुलाकर पूछ लो।"

उसी समय पडित बुलवा लिया गया। उसके आते ही रिंचन ने उसके पैर छूकर अभिवादन किया और बड़े आदरपूर्वक उसे अपने प्रधानमत्री के ही साथ बैठा दिया।

पडित घबराकर उठ गया, "नही महाराज, मेरे घर मे कोई नौजवान लडका नही है। इसलिए मैं आपकी सेना के लिए कोई सिपाही नही दे सकता। आपको कश्मीर के महाराजा की मान्यता देने के लिए, आप चाहे जो भी भूमि-कर मुझसे ले सकते हैं।"

रिंचन ने हसते हुए उसका हाथ पकड़कर फिर आसन पर बैठा दिया, "डरो नही, डरो नही। सैनिक नही चाहिए।"

"आप अहिंसा के देवता बुद्ध के उपासक है। जुलचू विदेशी बर्बर था। उसके मन मे दया-धर्म कुछ भी नही था। वह हमारे देश में रक्त की नदियां बहा गया। मगर आप तो अब यहीं के अन्न-जल से पनप गये। आप क्यों सेना को सगठित करने लगे ?"

"यह बात नहीं। मेरे राज्य में सभी हिंदू हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि मैं भी हिंदू ही हो जाऊं तभी मैं उनका विश्वास जीत सकूंगा।"

"फिर तुम कौन हो ?"

"हू तो मैं बौद्ध।"

"हिंदू, मुसलमान और बौद्ध ये तो सब बाहरी पहनने के कपड़े हैं। इनके भीतर जो चमड़ा और उसको सभाले हुए जो हड्डी है, वे भी सब ऐसे ही हैं। इनमे सारवस्तु वह है, जो बोलता और विचार करता है। उसका नाम है मानव। वह सही-सही विचारता और बोलता है। वही अगर तुम बन जाओ तो सभीका विश्वास जीत लोगे।"

"तो महाराज, मुझे उसीकी दीक्षा दे दीजिये।"

"अपने सिर में कोई बोझ न रखोगे, तो तुम वही बन जाओगे। समझ गये ?"

"हा, महाराज !"

"तो जाओ—तुम्हारा कल्याण हो।"

दोनों लौट गये। रिंचन ने पीछे-पीछे आते हुए नौकर से कहा, "महाराज ने तो सिर पर कोई बोझ न रखने को कहा था। पर तुम तो इसको लिए ही लौट आये।"

"आता क्यो नही ? महाराज तो केवल पत्ते-घास ही खाते है। वहा कुत्ते-बिल्लियो और चूहे-घूसों के खाने के लिए ये बढ़िया चीजे क्यों रख आता ?"

घर लौटकर रिंचन ने सोचा, 'हिंदू राजा के घर में पैदा होकर भी महात्मा बुद्ध को क्यों नास्तिक कहा जाता है ? शायद इसीलिए कि उन्होंने हिंदुओं की बाहरी दिखावट, उनके पाखड को मिटा दिया, चुटिया कटा दी, जनेऊ तोड़कर फेंक दिया, माथे का चदन अलग कर दिया, ऊच-नीच का भेद-भाव मिटा दिया, तो वे विधर्मी हो गये। अगर मैं इन सब चीजो को ग्रहण कर लू तो कौन नही मुझे हिंदू कहेगा ?"

वह भीतर ही भीतर बहुत प्रसन्न हो गया। उसे निश्चय हो गया कि हिंदू बन जाने की चाबी उसीकी अंटी में है। उसने एक जनेऊ मगाकर पहन लिया, चदन में केसर घिसकर माथे पर तिलक धारण कर लिया।

यह सब सहज व्यापार था। मगर चुटिया का क्या हो, वह तो कई महीनों की खेती है। एक चतुर सेवक ने काली बकरी के बालों का गुच्छा काटकर उसकी खोपड़ी के बीचोंबीच चिपका दिया। रिंचन ने दर्पण के आगे खड़े होकर अपने दर्शन किये। हठात् उसके भीतर यह आवाज उपज गयी, "मैं हिंदू हो गया!"

उसने अपने मंत्री तुक्का को बुलाकर उसका समर्थन प्राप्त किया। वह हिंदू ही था, बड़ा दूरदर्शी, बोला, "तुम हिंदू तो लगते हो, पूरे के पूरे। फिर भी अगर कहीं तुम्हारी कोई भूल पकड़ ली गयी तो बड़ी कठिनाई हो जायेगी। इसलिए मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूं। तुम जब विवाह करने जा रहे हो तो तुम्हारे साथ बारात जायेगी ही।"

"अवश्य।"

"बाराती सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर जावेंगे ही, इसमें कोई खटके की बात है ही नहीं। टोकरों में फल-फूल, मेवा-मिष्टान्न, साज-सज्जा के बहाने नौकर-चाकर भी ढाल-तलवारों का ही भार लेकर जावेंगे। बाजे वाले भी ढोल-ताशों के भीतर छुरे और कटारें छिपाये रहेंगे।"

रिंचन ने पूछा, "यह उद्वेग क्यों?"

"होना ही चाहिए! यदि पासा गलत पड़ गया, तुम्हारा हिंदुत्व नहीं माना गया तो विवाह विषाद में बदल सकता है। नहीं तो हंसी-खुशी बहू को लेकर बारात लौट आवेगी।"

तभी गगनगिरि को दूत भेजा गया कि महाराज रिंचन ने हिंदू धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली है। कन्यापक्ष वाले किसी सुदिन में विवाह का लगन निश्चित कर सूचना दें।

विवाह का दिन निर्धारित हो गया। राजधानी के जीर्णोद्धार का इससे अच्छा अवसर और क्या आता! दुर्ग और राजभवन सरकार की ओर से

सजाये जाने लगे। जो सपन्न लोग थे, उन्होंने अपनी सामर्थ्य-भर अपने-अपने घर और भवनों को गुम्प देना आरभ किया।

इस सवध से सत्ता के लिए सघर्ष करने वाले रामचंद्र और रिंचन मे एकता होती जान पड़ी जिससे शाहमीर की शक्ति तथा उत्साह ढीला होता चला गया।

रिंचन की रियासत और गगनगिरि के भवनों मे तो तैयारियां हो ही रही थी, इन दोनों स्थानो के बीच के मार्ग मे जहा-जहा जुलचू ने गाव जला, खेती रौंदकर विध्वंस कर रखा था, उसे भी सुंदर बनाया जा रहा था कि बारात के मार्ग में यही कोई अपशकुन दिखाई न दे।

बारातियो के अस्त्र-शस्त्रो पर धार चढ़ाई जाने लगी। कवचो को चमकाया गया। बहुतो के वस्त्र-परिधान नये बनाये गये। बारात के जुलूस के लिए मशालें बरछों के लोहे पर कपडा बाधकर बनाई गयी कि आवश्यकता पड़ने पर उनसे दोहरा काम लिया जा सके। मानो बारात क्या थी, किसीके दुर्ग पर चढ़ाई थी।

धीरे-धीरे वह सुदिन निकट आ पहुचा। गगनगिरि रिंचन की छावनी से प्राय. आधे दिन के पड़ाव पर था। तारो की छाह रहते ही बाजे बजने लगे थे। बारातियो मे अपनी-अपनी सजावट के लिए एक होड़-सी मच गयी थी। जो सपन्न थे उन्होने सोने-चादी के आभूषण पहने। जो छोटे थे उन्होने गिलट और लाख-काच के। निर्धन लोगो ने खुमानी की गुठलियों और अखरोट के छिलको को जोड-रगकर उनकी मालाएं पहनी।

नहा-धोकर रिंचन अपने शयन-कक्ष मे बैठा था। एक दासी उसको अगराग से सुभूषित कर वस्त्राभूषण पहना रही थी, और दूसरी बाला कालीन पर बैठकर, सुरसिंगार के तारो मे कोई रागिनी छेड़कर वातावरण मे रंग भर देना चाहती थी, पर उसकी अगुलियो ने उसके अधरो का साथ देना स्वीकार नही किया। त्रुटि उसने तारो की समझी। बाजे को गोद में सुलाकर उसने उसके कान मरोड़ना आरंभ किया।

रिंचन ने हसते हुए कहा, "क्यो भागो, आज इतनी विचलित क्यो है? तेरे मन मे ही साम्य नही है। कौन-सा विक्षेप भर गया?"

भागो ने फिर सुरसिंगार को कधे पर ले लिया और उसके तारो पर

अंगुलियाँ छेड़ती हुई बोली, "नहीं सरकार, आज इतने बड़े उत्सव के दिन क्यों किसी विक्षेप को मन में बसने दूंगी ?"

"फिर तुझे अपने बाजे पर क्यों अविश्वास हो गया ? वह क्यों नहीं तेरे गले के साथ चल रहा ? तू क्यों उसके पीछे-पीछे जा रही है ? ले !" यह कहकर रिंचन ने एक हीरे की अंगूठी उसपर निछावर कर दी, "ले इसे पहनकर तो देख, शायद तेरे ऊपर किसी वक्र ग्रह की दृष्टि सीधी हो जाये।"

भागो ने प्रकाश-किरणों के तीर चलाती हुई वह हीरे की अंगूठी पहले अपने माथे से लगाकर महाराज के गुण गाये फिर उसे पहनकर गीत आरम्भ किया। फिर कोई विसंगति नहीं जान पड़ी।

महाराज रिंचन जो अभी तक 'क्या पहनूं' की दुविधा में झूल रहे थे, उन्हें भी एक निर्णय मिल गया। दासी क्या जाने, उसने उलटे कंधे पर उन्हें जनेऊ पहना दिया। जो उनका पुरोहित बनकर उनके साथ जा रहा था, उसने यह भूल तो ठीक करा दी मगर उनके सिर पर जो बकरी के बालों की चुटिया चिपकाई गयी थी, पुरोहित जी ने उसपर जब हाथ मार-कर देखा तो दो-चार बाल उनके हाथ में आ गये। पर वे बोले, "ठीक है, राजमुकुट के भीतर बंद चुटिया पर हाथ मारने की किसकी हिम्मत है !"

विराट् भोज के लिए कई प्रकार के व्यंजन तैयार हो रहे थे। उनकी रस-सुगंधि चारों ओर प्रवाहित थी।

जोखू को भी निमंत्रण मिला। बहुत प्रभात में उठकर उसने स्नान किया फिर अपने गधे को भी उबटन मलकर स्नान कराया। उसपर एक बढ़िया शाल बिछाया, और उसके ऊपर एक ऊनी आसन। उसके गले में सोने की एक बहुमूल्य माला पहनायी और छोटी-छोटी घंटियों का एक गुच्छक, जो गधे की चाल पर कई-कई स्वरों में टनटनाते थे।

एक सैनिक ने उसकी तैयारी देखकर पूछा, "क्यों भगत जी, क्या आपके साथ ये भी जायेंगे बारात में ?"

"क्यों नहीं ?"

"हाथी और घोड़ों के बीच में ये कैसे दिखाई देंगे ?"

"यह तुम क्या जानो। इनकी महिमा मैं जानता हूं या महाराज रिंचन।"

एक जगह छावनी की तमाम नारियां ढोलक बजाकर गाना गा रही थी। कुछ अपनी उमंग को चपल चरणों और उत्तोलित करों में लेकर थिरक रही थी।

भोजन का समय निकट आया। मान-सम्मान और पदवी के अनुसार कई जगह उसका प्रबंध था। कुछ महाराज के साथ उनके भवन में, कुछ लोग आगन मे और सबसे अधिक लोग रसोई के निकट मैदान में भोजन के लिए बैठाये गये।

भोजन करते-करते दोपहर हो गयी। कुछ दूरदर्शियों को यह विलब खटकने लगा। उन्होंने जाकर महाराज से सावधानी बरतने को कहा।

तुरहिया बज उठी। उद्घोषको ने चिल्लाना आरंभ किया, "समय हो गया! दूसरी तुरही के बजने तक सभी लोग महाराज के महल के सामने के मैदान में, जैसे कल अभ्यास कराया था, उसी हिसाब से खड़े हो जायें। सबके कपड़े और अलकार यथास्थान हो। अस्त्र-शस्त्र या भेंट की सामग्री जिस-जिसको दी गयी है, वह योजना के अनुसार उसीके अधिकार में रहे। असावधानी से यदि कोई ठीक स्थान पर न पाया गया तो वह बारात मे शामिल नही किया जायेगा, यही उसका दड होगा।"

महाराज रिंचन को सहदेव के ही वस्त्र और अलकार पहनाये गये। मस्तक पर उन्हीका राजमुकुट सुशोभित किया गया। बाजे बज उठे। कुछ आगे थे, कुछ पीछे। नारियो ने अट्टालिका पर से मंगल-गीत आरभ कर हाथी पर सवार और छत्र ताने महाराज के ऊपर अक्षत और फूलों की वर्षा की।

चाटुकारो ने जयघोष किया, "महाराज रिंचन को आज का दिन शुभ हो! महाराज रिंचन की जय!"

रिंचन ने छत्र ताने हुए सेवक के कान मे कुछ कहा। उससे प्रेरित होकर वह चिल्लाया, "महारानी कोटा की जय!" फिर तो और अनेक लोगो ने उसके स्वर मे स्वर मिलाया।

जोखू महाराज के मघा-मंदिर तक यह चहल-पहल बहुत सूक्ष्म होकर

ही टकरा रही थी। उसके मन में यह अहंकार अपना माथा उठाये था, 'अजी बारात बिना मुझे अपने साथ लिए चली कैसे जावेगी ? जब मैंने महाराज सहदेव के सारे मुकुट-आभूषण उन्हें सौंपे तभी तो वे राजा बने और तभी कोटारानी उनसे शादी करने को तैयार हुई।'

गधे पर सवार होकर चला जोखू। रिंचन के महल में जाकर उसने देखा, वहां कोई नहीं। बारात जा चुकी थी। रसोई के निकट एक चाकर जूठे पत्तल बटोरकर फेंक रहा था। उसने कहा, "जोखू महाराज, आप कहां रह गये ?'

जोखू गधे पर से उतरकर बड़े आश्चर्य में पूछने लगा, "क्या बारात चली गयी ?"

"हां, मगर तुमने क्यों देर लगायी ? और तुम जीमने भी क्यों नहीं आये ?"

"मैं इतवार का व्रत रखता हूं, क्या तुम यह नहीं जानते ?"

"पर तुम्हारा यह वाहन तो मेरे हाथ के इन जूठे पत्तलों पर मुंह मार रहा है।"

"बको मत, तुम इसकी महिमा नहीं जानते। इसीकी बदौलत तो रिंचन आज महाराज बने हैं।"

"तुम्हारा मतलब क्या है ? क्या वे हाथी को छोड़कर इसीपर सवार होकर कोटारानी से विवाह करने जाते ?"

उनकी बातें सुनकर एक रसोइया उधर निकल आया। बोला, "क्यों जी, क्या तुम इस गधे पर सवार होकर बारात में जाओगे ? अच्छा हुआ कि तुम देर से आये, नहीं तो महाराज रिंचन लाठियों की मार से इस गधे को हाथी-घोड़ों के बीच से निकाल देते।"

जोखू यह अपमान नहीं सह सका। वह चुपचाप लौट गया और मन ही मन कहने लगा, अगर रिंचन को ऐसा अभिमान जाग उठा है, तो उसके विवाह में जरूर कोई न कोई विघ्न पड़ेगा।

रिंचन की बारात का दिन और समय राज्य में दूर-दूर तक फैला दिया गया था। बारात के मार्ग में उस दिन सुबह से ही पास के गांवों से लोग जमा होने लगे थे। रिंचन की तरफ से दर्शनार्थी बच्चों को मिठाई

"यह तुम क्या जानो। इनकी महिमा मैं जानता हूं या महाराज रिंचन !"

एक जगह छावनी की तमाम नारियां ढोलक बजाकर गाना गा रही थीं। कुछ अपनी उमंग को चपल चरणों और उत्तोलित करों में लेकर थिरक रही थीं।

भोजन का समय निकट आया। मान-सम्मान और पदवी के अनुसार कई जगह उसका प्रबंध था। कुछ महाराज के साथ उनके भवन में, कुछ लोग आंगन में और सबसे अधिक लोग रसोई के निकट मैदान में भोजन के लिए बैठाये गये।

भोजन करते-करते दोपहर हो गयी। कुछ दूरदर्शियों को यह विलंब खटकने लगा। उन्होंने जाकर महाराज से सावधानी बरतने को कहा।

तुरहियां बज उठीं। उद्घोषकों ने चिल्लाना आरंभ किया, "समय हो गया ! दूसरी तुरही के बजने तक सभी लोग महाराज के महल के सामने के मैदान में, जैसे कल अभ्यास कराया था, उसी हिसाब से खड़े हो जायें। सबके कपड़े और अलंकार यथास्थान हों। अस्त्र-शस्त्र या भेंट की सामग्री जिस-जिसको दी गयी है, वह योजना के अनुसार उसीके अधिकार में रहे। असावधानी से यदि कोई ठीक स्थान पर न पाया गया तो वह बारात में शामिल नहीं किया जायेगा, यही उसका दंड होगा।"

महाराज रिंचन को सहदेव के ही वस्त्र और अलंकार पहनाये गये। मस्तक पर उन्हींका राजमुकुट सुशोभित किया गया। बाजे बज उठे। कुछ आगे थे, कुछ पीछे। नारियों ने अट्टालिका पर से मंगल-गीत आरंभ कर हाथी पर सवार और छत्र ताने महाराज के ऊपर अक्षत और फूलों की वर्षा की।

चाटुकारों ने जयघोष किया, "महाराज रिंचन को आज का दिन शुभ हो ! महाराज रिंचन की जय !"

रिंचन ने छत्र ताने हुए सेवक के कान में कुछ कहा। उससे प्रेरित होकर वह चिल्लाया, "महारानी कोटा की जय !" फिर तो और अनेक लोगों ने उसके स्वर में स्वर मिलाया।

जोग्य महाराज के गधा-मंदिर तक यह चहल-पहल बहुत सूक्ष्म होकर

ही टकरा रही थी। उसके मन में यह अहंकार अपना माथा उठाये था, 'अजी बारात बिना मुझे अपने साथ लिए चली कैसे जावेगी? जब मैंने महाराज सहदेव के सारे मुकुट-आभूषण उन्हें सौंपे तभी तो वे राजा बने और तभी कोटारानी उनसे शादी करने को तैयार हुई।'

गधे पर सवार होकर चला जोखू। रिंचन के महल में जाकर उसने देखा, वहां कोई नहीं। बारात जा चुकी थी। रसोई के निकट एक चाकर जूठे पत्तल बटोरकर फेंक रहा था। उसने कहा, "जोखू महाराज, आप कहां रह गये?'

जोखू गधे पर से उतरकर बड़े आश्चर्य में पूछने लगा, "क्या बारात चली गयी?"

"हां, मगर तुमने क्यों देर लगायी? और तुम जीमने भी क्यों नहीं आये?"

"मैं इतवार का व्रत रखता हूं, क्या तुम यह नहीं जानते?"

"पर तुम्हारा यह वाहन तो मेरे हाथ के इन जूठे पत्तलों पर मुंह मार रहा है।"

"बको मत, तुम इसकी महिमा नहीं जानते। इसीकी बदौलत तो रिंचन आज महाराज बने हैं।"

"तुम्हारा मतलब क्या है? क्या वे हाथी को छोड़कर इसीपर सवार होकर कोटारानी से विवाह करने जाते?"

उनकी बातें सुनकर एक रसोइया उधर निकल आया। बोला, "क्यों जी, क्या तुम इस गधे पर सवार होकर बारात में जाओगे? अच्छा हुआ कि तुम देर से आये, नहीं तो महाराज रिंचन लाठियों की मार से इस गधे को हाथी-घोड़ों के बीच से निकाल देते।"

जोखू यह अपमान नहीं सह सका। वह चुपचाप लौट गया और मन ही मन कहने लगा, अगर रिंचन को ऐसा अभिमान जाग उठा है, तो उसके विवाह में जरूर कोई न कोई विघ्न पड़ेगा।

रिंचन की बारात का दिन और समय राज्य में दूर-दूर तक फैला दिया गया था। बारात के मार्ग में उस दिन सुबह से ही पास के गांवों से लोग जमा होने लगे थे। रिंचन की तरफ से दर्शनार्थी बच्चों को मिठाई

और निर्धनों को सिक्के भी बाटे जाने का प्रबंध था।

सारे-मार्ग भर बाजे बजाते हुए बारात ठीक सूर्यास्त पर गगनगिरि की सीमा पर पहुच गयी। वहा एक जलाशय के निकट धर्मशाला मे बारात के जलपान का प्रबंध था।

जब शाम हो गयी, अधेरा बढ़ने लगा तो मशालें प्रज्वलित कर ली गयी और फिर बाजे-गाजे के साथ बारात दुलहिन के निवास को चली।

गगनगिरि का दुर्ग ध्वजा-वंदनवार और दीपमालाओं से सारे का सारा घेर दिया गया था। केले के खभो, फूल-मालाओ और रेशम की इद्र-धनुषी पताकाओ मे विवाह-मंडप की शोभा की वृद्धि की गयी थी। मच पर विविध रगो के सयोग से चारु चित्रकारी अकित हुई थी।

विवाह-मंडप से बाहर स्वागत-द्वार तक मार्ग मे दरी-कालीन बिछाये गये थे। फाटक के दोनो ओर मचान बाधकर शहनाई-वादक सुमधुर रागिनियों से उत्सव मे मगल भावना जगा रहे थे।

द्वार पर वर के स्वागत के लिए धूप-दीप, अर्घ्य, गंध-अक्षत और फूल-मालाओ का आयोजन था। सभीके चरण धोने और हाथ-मुह धोने के लिए गुलाब और केवड़े के जल की व्यवस्था थी। बाहरी फाटक से लेकर वहा तक दोनों ओर सुदरी नवयुवतियां अपने-अपने कधों पर आम्रपल्लवों से सयुक्त मगल-घट लिए खडी, एक हाथ से घड़ा संभाले और दूसरे मे प्रज्वलित दीपक लिए शोभायमान थी।

और भीतर अपने कक्ष मे नहा-धोकर सोलह शृंगार किये कोटारानी बैठी थी। बाहर की ध्वनियों के सहारे वह अपने मन में विवाह का चित्र उजागर करती जा रही थी। कई जगह तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। ऊपर अट्टालिका मे नारिया गीतो मे देवताओ से मंगल प्रार्थना कर रही थी। द्वार-पूजा की चहल-पहल का भी कोटारानी भीतर बैठी-बैठी ही अदाज लगा ले रही थी। दो सौ बारातियो के भोजन के लिए जो विविध मिठाइया और पकवान बनाये जा रहे थे खुली हुई खिड़की और द्वारो से उनके सुवास की लपटें भी उसकी कल्पना जगा रही थी।

कई साल पहले के स्मृति-चित्र ने फिर आकर उसे घेर लिया। पछीत गाव के मुखिया की वह लाड़िली कन्या आज फिर रामचंद्र की कन्या बन-

कर विवाह में दी जाने वाली बलि होकर बैठी है।

उसने ठंडी सांस लेकर विचारा, 'हां, मैं विवाह की बलि होकर ही तो बैठी हूं। तिब्बत के अनार्य वंश का यह म्लेच्छ क्या मेरा पति होने योग्य था! विधाता के इस लेख को फाड़कर कहां फेंक दूं?'

फिर उसने संयत होकर सोचा, 'पर क्या करूं, अपने देश की प्रजा के कल्याण के लिए मुझे अपनी भावनाओं का विसर्जन कर ही देना होगा। मैं अपने स्वप्नों में रानी बनी हूं। कौन कह सकता है, यदि इस बौद्ध के पाणि-ग्रहण से ही मुझे वह पद मिल जाये।

'यह हिंदू होकर आ गया! धर्म क्या मानव की हड्डी और चमड़े जैसा होता है? क्यों नहीं वह कपड़ों की तरह से बदला जा सकता? इसकी आंखें छोटी और नाक चपटी भी है तो क्या? रामचंद्र की तरह यह कायर नहीं है। इसके मन की दृढ़ता ने इसकी भुजाओं को बलिष्ठ बनाया है। जुलचू का सामना करने को क्या यह आगे नहीं बढ़ आया था! हमारी ही सभ्यता में पला यह युवक हमारे देश की प्रजा और उसकी संस्कृति का प्रेमी हो उठा है। हिंदू धर्म की दीक्षा लेकर इसने संस्कृत सीखने के लिए एक ब्राह्मण पंडित को भी नौकर रख लिया है।'

फिर बाहर बड़े जोर-शोर से बाजे बज उठे। दोनों पक्षों की ओर आकाशभेदी तुमुल ध्वनि गूंज उठी। लोगों का कोलाहल भी बढ़ गया।

शंख-ध्वनि से कोटारानी समझ गयी कि अब बारात [illegible] मंडप के निकट आ गयी। उसकी भी दासियां बाहर देखने गयी थीं, उन्होंने लौटकर इस तथ्य का समर्थन किया। पंडितगण ऊंचे स्वर से वेदपाठ करने लगे।

"सबसे पहले तूने मेरे स्वप्न का संबोधन वहां से निकालकर मुझे दे दिया। तुझे पुरस्कार देना भूल न जाऊंगी। बारात कितनी है?"

"दो सौ के लिए तो पहले ही तय था। उससे भी कहीं ज्यादा जान पड़ती है।"

तभी अचानक बाहर शोर बढ़ चला। फिर जोर-जोर से तीन बार सुरही बज उठी। अब तक जो बाजे-गाजे की सुमधुर ध्वनि आ रही थी वह एकाएक बंद हो गयी और उसके स्थान पर नभ-भेदी रण-ध्वनि सुनाई देने लगी, "मारो-मारो! जो भी सामना करने का साहस करता है, उसके टुकड़े-टुकड़े कर धरती पर बिछा दो!"

कोटारानी चिल्ला उठी, "यह क्या हो गया?"

तलवारों की खनक और मार-काट की आवाजों से उसके भीतर की वीर नारी जाग उठी। उसने फौरन दीवार पर टंगी अपनी तलवार उठाई और दुपट्टे से अपनी कमर पर घाघरा बांध बाहर को जाने लगी।

तभी बाहर से दो दासियां वहां दौड़कर आयीं और उन्होंने कोटारानी को हाथ पकड़कर रोक लिया, "देवी जी, आप बाहर कहां जा रही हैं, वधू के वेश में! बाहर भयानक मारकाट मच गयी है।"

दोनों दासियों ने सभी द्वारों पर शृंखल और अर्गल चढ़ा दिये। बाहर रण-कोलाहल गगनभेदी होता जा रहा था।

दूसरी दासी बोली, "नहीं-नहीं, आप अकेली वहां क्या कर सकेंगी? वे दो सौ से भी अधिक जवान पहले से ही अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर आये हैं। वे जुल्चू की राक्षसी सेना के ही समान हैं। उनका सामना नहीं किया जा सकता। इन तिब्बतियों ने हमें भयानक धोखा दिया है।"

"आपका बाहर जाना ठीक नहीं। वे आपका हरण कर आपको बंदिनी बनाकर उठा ले जायेंगे।"

कोटारानी के भीतर उमड़ा हुआ शौर्य भी अब समुद्र के भाटे की भांति बैठ गया, "यह कैसे हो गया? मुझे विश्वास ही नहीं होता। कहां विवाह का उत्सव, और कहां रण का अभियान। विरोध किसकी ओर से हुआ? युद्ध की चिनगारी किसने भड़कायी?"

"वर के साथ हमारी ओर के किसी पुरोहित की कहा-सुनी हो गयी।

जिससे क्रुद्ध होकर रिंचन ने अपनी कमर में खोंसी हुई तुरही निकाल तीन बार जोर-जोर से बजा दी और सभी बाराती अपनी-अपनी तलवारें चमकाकर रण के लिए प्रकट हो गये।"

"पुरोहित ने क्या कह दिया ?"

"उन्होंने वर से जनेऊ हाथ में लेकर एक बार गायत्री मंत्र बोलने को कहा। उन्होंने जनेऊ निकालकर मन ही मन गुनगुनाना आरंभ किया। पंडित ने जोर से उच्चारण करने को कहा। उन्होंने जो उच्चारण किया, उससे पुरोहित को संतोष न हुआ। वह बोला, 'जनेऊ कोई झूठे भी पहन सकता है।' रिंचन की तरफ का पंडित बोला, 'चुटिया तो नहीं पहनी जा सकती ?' रिंचन ने क्रोध में आकर अपने सिर पर चुटिया दिखा दी।"

कोटारानी बोली, "फिर संघर्ष कैसे उत्पन्न हो गया ?"

"पुरोहित के उस चुटिया पर हाथ रखते ही वह उनके हाथ ही में उखड़कर आ गयी। कन्यापक्ष के सबके सब हंस पड़े। बोले, 'यह नकली वेश बनाकर आया है !' रिंचन इस अपमान को नहीं सह सका और उसने तुरही बजा दी। भयानक युद्ध आरंभ हो गया।"

कोटारानी ने रोने के स्वर में पूछा, "भयानक ! और वे कहां हैं ?"

"कौन, महाराज रामचंद्र ?"

"हां, वही !"

"रिंचन ने उस चुटिया खींचकर उखाड़ देने वाले के पेट में लात मारकर उसे भूमि पर गिरा दिया, वह मूर्च्छित हो गया। पुरोहित की यह दुर्दशा महाराज से न देखी गयी। जिस चौकी पर वे बैठे थे, उसे उठाकर उन्होंने रिंचन के सिर पर पटक देना चाहा। उसके किसी सिपाही ने उनका हाथ पकड़ लिया। फिर न जाने क्या हुआ ? भगदड़ मच गयी। हम भी भागकर आपको सावधान करने यहां चली आयी हैं।"

कोटारानी की नसों में फिर प्रतिहिंसा उभड़ने लगी। वह फिर अपने खड्ग को खोजने लगी। दासी ने उसे छिपा दिया था।

बाहरी द्वार पर कुछ हथेलियां बज उठीं और फर्श पर जूतों की खट-खट सुन पड़ी, *"खोलो दरवाजा !"*

"नहीं, यह अंत:पुर है। नारियां हैं।"

"हम नारियों की ही खोज में हैं।"

"ऐसे निर्लज्ज कौन हो तुम ?"

"हम महाराज रिंचन के सिपाही हैं।"

"क्या तुम्हें महाराज रामचंद्र की प्रभुता के लिए कोई आदर नहीं ?"

"कौन रामचंद्र ? जिसने हमारे महाराज को विवाह के लिए बुलाकर उनका घोर अपमान कर दिया, उनकी चुटिया जोर से उखाड़कर उनके सिर की चमड़ी उधेड़ दी ? वह रामचंद्र जो उन्हें मारने दौड़ा था, और अब धरती पर पड़ा अपनी सासें पूरी कर रहा है !"

कोटारानी जोर-जोर से रोने लगी। दासी उसके अधरों पर हाथ रखकर सांत्वना देने लगी, "शोक को पचा लो। ये सिपाही अवश्य तुम्हारी ही खोज में आये हैं। तुम्हारा सधान पा लेने पर ये द्वार तोड़कर तुम्हारा हरण कर ले जायेंगे।" दासी कोटारानी का वेश बदल उसे छिपाने का उद्योग करने लगी।

"खोलो द्वार ! नहीं तो···" सिपाहियों ने फिर द्वार पर ठोकरें मारना आरंभ किया।

दासी ने उत्तर में कहा, "राजा की शत्रुता राजा से होती है, सिपाहियों की सिपाहियों से। निःशस्त्र अबलाएं असहाय होती हैं। तुम लोगों ने काश्मीर को अपनी मातृभूमि बना लिया है। क्या तुम उन बर्बर तातारियों की तरह औरतों से निर्लज्जता का व्यवहार करोगे ? क्या हमारी धन-संपत्ति लूटोगे ?"

"हम सिर्फ कोटारानी की खोज में आये हैं। हमारे महाराज रिंचन के साथ आज ही के लग्न में उनका विवाह होगा। इसलिए जल्दी बताओ वे कहां हैं। यह उन्हींकी भलाई की बात है।"

कोटारानी का सारा वधू-वेश उतारकर उसे एक मैली धोती पहना दी गयी थी। फिर उसे दरी पर सुला उसके ऊपर कंबल डाल दिया गया।

एक दासी ने द्वार खोलकर कहा, "देख लो।"

सिपाहियों ने सभी कोने देख लिए, चारपाई के नीचे, परदों के पीछे और संदूकों के भीतर भी। एक बोला, "यह सोया कौन है ?"

"नौकरानी है, बुखार में पड़ी है।"

सिपाही ने उसका कवच खींचा। उसकी मैली धोती पर उसने मुंह बिचकाया और सब चले गये। दासियों ने फिर द्वार बंदकर लिये।

अब मारकाट की ध्वनियां कुछ दूर चली गयी थीं। एक दासी ने खिड़की खोलकर देखा, रसोईघर की तरफ कुछ कोलाहल जारी था।

घंटे-भर बाद जान पड़ा कि जो प्रतिरोध के लिए सामने आये थे, वे परास्त कर दिये गये। कुछ भूमि पर पड़े थे, कुछ भाग गये, कुछ घरों के भीतर छिप गये।

कुछ सरदारों के साथ रिंचन का प्रधानमंत्री तुक्का चार सैनिकों के साथ महाराज रिंचन की घोषणा करवाता रसोईघर में गया। एक सैनिक ने तुरही फूंककर सबका ध्यान खींचा, दूसरे ने ढोल पर तीन चोटें कीं, और तीसरे ने ऊंची आवाज में कहा, "सुनो भाइयो, कश्मीर के नये महाराज रिंचन के प्रधानमंत्री पधारे हैं। वे कोई बाहर के नहीं हैं, तुम्हीं लोगों में से, तुम्हारे ही धर्म के हैं। वे नये महाराज की घोषणा करेंगे। ध्यानपूर्वक सुनो।" चौथे सैनिक ने अपने हाथ में ली हुई मशाल प्रधानमंत्री पर निकट से दिखाई।

प्रधानमंत्री बोले, "भाइयो, तुममें हमारी कोई लड़ाई नहीं है। तुम बदस्तूर अपना काम करते रहो। यह सारी रसोई हमारे ही लिए विशेषकर बनायी गयी है, और इसे खायेंगे हम ही। इसके बाद महाराज रिंचन का संदेश सुनाया जायेगा।"

एक ने साहस कर पूछा, "महाराज रामचंद्र कहां हैं?"

एक सरदार ने इसके उत्तर में कहा, "तुम्हारे महाराज तो अपने असली घर चले गये हैं और हमारे महाराज उनके घर।"

फिर प्रधानमंत्री ने कहा, "इसमें घबराने की बात नहीं है। यह सब भगवान के आदेश के अनुसार ही हुआ है। महाराज रिंचन राजसभा में बैठे कश्मीर के हितैषियों के साथ परामर्श कर रहे हैं। यहां के सब पुराने सरदारों-मंत्रियों, सेना-सेवकों, दास-दासियों को उन्होंने अभय दे दिया है। जो जहां पर है, वहीं रहेगा। बस।"

रामचंद्र के राजसिंहासन पर महाराज सहदेव के राजमुकुट और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर रिंचन बैठे। उनके नीचे चौकियों पर

दोनो पक्षो के हितचिंतक सरदार और मत्री। सभी द्वारो पर अंगरक्षक और सैनिक पहरे पर खड़े थे।

सभाभवन भरा हुआ था। अधिकांश में पुराने महाराज के सहकारी ही नये महाराज को अपनी राजभक्ति का विश्वास देने आये थे। महाराज ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, "मैं कोई विदेशी आक्रामक नही हूं, जो तुम्हे लूटकर भाग जाने के लिए यहा आया हूं। मैं इसी देश के मिट्टी-पानी से पला हू। मैं उस बर्बर जुलचू के पदाघात से विध्वस्त इस देवभूमि के पुनरुत्थान के लिए सधि लेकर आया था, पर मेरे धर्म-परिवर्तन का उपहास किया गया। इसीसे मुझे अपने उन विरोधियों का सामना करना पड़ा। मुझे इसका दु ख है, पर यह होना ही था। कल सारे राज्य-भर मे मैं फिर यह घोषित कर दूगा कि राज-काज पूर्ववत् चलता रहेगा। केवल कुछ विशेष अधिकारी नियुक्त किये जायेगे।"

तुक्का आकर महाराज रिंचन के सामने खड़ा हो गया। रिंचन ने कहा, "ये मेरे प्रधानमत्री का पद सभालेगे।" फिर उसके स्थान पर एक दूसरा व्यक्ति खड़ा हो गया। रिंचन बोला, "ये भी आप ही लोगो के वंशज है। ये प्रधान सेनापति रहेंगे। अब सब लोग विश्राम करें। मेरी इस अभय वाणी से निश्चित और निरापद होकर रहिये। जिसकी जो भी कठिनाई होगी, वह निष्पक्षतापूर्वक न्यायालय से दूर की जायेगी।"

सब नये महाराज की जय पुकारकर चले गये। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी।

"महाराज, आपकी यह रक्त मे सनी तलवार धोकर ले आया मैं।" एक सेवक ने रिंचन की सेवा मे खड़ी एक परिचारिका को उसे सौंप दिया।

महाराज ने पूछा, "सभी घायल उपचार के लिए और मृतक अत्येष्टि के लिए सौंप दिये गये क्या ?"

"हां, केवल रामचंद्र का शव पड़ा है भूमि पर। अभी तक उसका कोई उत्तराधिकारी नही मिला।"

"और कोटारानी ?"

"उनकी खोज अभी जारी है।"

"मेरी अर्द्धांगिनी के रूप में नहीं, अपने चाचा के लिए उन्हें कर्त्तव्य पूरे करने है पहले। अरे जोर-जोर से चिल्लाकर इस सत्य को उद्घाटित करो। कोटारानी जहां भी छिपी होगी, चली आवेगी। ऐसा नही हो कि कहीं कोई पक्षी या शृगाल उन्हें घसीटकर ले जाये।"

उस सेवक के जाते ही एक दूसरा सैनिक रस्सी मे बधे एक बंदी को लेकर आया, "महाराज, यह कोई चोर जान पड़ता है। यह लड़ाई में मरे-अधमरे मनुष्यो के अगो से आभूषण उतार रहा था।"

रोते-रोते वह बोला, "यह सत्य नही है।"

सिपाही ने उसकी टाग में रस्सी मारकर कहा, "क्या तू एक शव के अग नही टटोल रहा था?"

वह फिर जोर से रो पडा, "महाराज, आपने पहचाना नही मुझे, मैं रावणचद्र हू।"

तुक्का हसकर बोला, "रावणचंद्र! तू कैसा रामचंद्र का भाई है? रावण तो उनका शत्रु था।"

रिचन बोला, "हा मैंने पहचान लिया तुम्हें। सैनिक, इनके बधन खोल दो।"

रावणचद्र मुक्त होकर बोला, "महाराज रिचन की जय!"

रिंचन ने पूछा, "यदि मैं राज्य-शासन मे तुम्हें कोई अच्छा पद दे दूं तो क्या तुम उसे अपनी क्षति की पूर्ति समझोगे या मेरे कर्म का प्राय-श्चित्त?"

"दोनो में से कुछ भी नही। सभी कुछ अपने-आप होता जा रहा है।"

"कोटारानी कहां है?"

"मैं नही जानता।"

"क्या तुम उसे ढूढोगे?"

"प्रयत्न करूंगा।"

"मेरा हिंदुत्व स्वीकृत नही हुआ। क्या तुम भी केवल चुटिया-जनेऊ को ही हिंदुत्व की एकमात्र पहचान समझते हो?"

"नहीं।"

"क्या तुम इस निष्कर्ष से मेरे द्वारा दिये जाने वाले पद का मोल तो

नहीं दे रहे हो ?"

"जो भी आप समझ लें।"

"तो सुनो, कोटारानी मेरी ही है। कुछ अदूरदर्शी लोगों ने अपनी भूल से मेरी बारात को सामरिक अभियान में बदल दिया। क्या तुम कोटारानी तक मेरी इस आकांक्षा को पहुंचा दोगे ?"

"अपराध क्षमा हो। इस समय मैं अपने भाई के शोक में डूबा हूं। मैं आपके इस वैवाहिक संदेश को वहन करने में सर्वथा असमर्थ हूं।"

"प्रहरी, इनको जाने दो।"

रावणचंद्र आंसू पोंछता हुआ चला गया।

भाई की मृत्यु के अशौच के दिन पूरे कर, रावणचंद्र अब कोटारानी की *खोज में चला। इसलिए नहीं कि रिंचन उसे शीघ्र ही शासन में कोई ऊंचा* पद दे देगा, पर···

रामचंद्र ने आजीवन विवाह नहीं किया। बहुत समय तक उसे यह आशा बंधी रही कि कोटारानी कभी न कभी उसके नीरव प्रणय को सकार लेगी। पर यह केवल एक मृगतृष्णा रही। अंत में एक दिन उसने जब उसे चाचा संबोधन दे दिया तो उसकी वह आशा भूमिसात् होकर रह गयी।

उसने अब अपने जीवन से ही प्रतिहिंसा लेने की ठान ली, फिर विवाह ही नहीं किया। उसके जो कुछ रत्नाभूषण थे, वे तो सब रिंचन को मिल ही चुके थे, शेष सारी चल-अचल संपत्ति भी उसीके अधिकार में आ गयीं।

रावणचंद्र एक दूसरे भवन में रहता था। उसने भी भाई की पीड़ा को बांट लेने के लिए कभी विवाह नहीं किया। जो कुछ धन-संपत्ति उसके पास थी, या भाई से मिली हुई थी, उसीसे वह अपने दिन काटता रहा।

अब वह निवृत्त हो अपने एक पुराने भृत्य गोवर्धन के साथ बैठा हुआ था। वह उदास, मन-मारे, काले-कुरूप भविष्य की अपरिचित भूमि के भीतर दृष्टि गड़ाये कुछ सोच रहा था।

गोवर्धन बोला, "तो अब चिंता करने की बात ही क्या है ? रिंचन ने तुम्हें वचन तो दे ही रखा है। वह किसीकी योग्यता की उपेक्षा नही कर रहा है।"

"पर ओट में उसका मतलब कुछ और है। मैं उसका अनुसरण नही कर सकता। मेरा अंत.करण इसकी अनुमति नही दे रहा।"

"तो राज्य के जो सरदार उसके विरोध में है, उनमें से क्या किसी एक के पक्ष में मिल जाओगे ?"

"सोचना पड़ेगा।"

"मेरी समझ मे लावण्यकों का दल उन सबमें अधिक संगठित, समृद्ध और बलशाली है। तुम्हारा स्वयं वहा जाकर सम्मिलित हो जाना ठीक नही। मैं उनके पास जाकर तुम्हारा सहयोग लेने का सुझाव देता हू। फिर स्वयं वे यहा आकर तुम्हारे सहयोग की आकाक्षा करेंगे।"

"हरिपर्वत पर वे सगठित हो तो रहे हैं। सेना का भी जमाव हो गया है। पर मुख्य समस्या हो गयी है अनाज के भडार की। जुलचू तमाम अनाज खा गया, खेती विनष्ट कर गया।"

"रिंचन के सामने भी तो यही प्रश्न ज्वलत है। पर उसने अपनेको सहदेव का उत्तराधिकारी साबित कर अधिकाश प्रजा को अपने वश में कर लिया है। अब प्रजा अन्न से भी उसकी सहायता कर रही है।"

"वह घोर झूठ बोलता है। अवश्य ही रिंचन ने उनका वध करा, उनके राजमुकुट और रत्नाभूषण अपने अधिकार में कर लिए। उत्तराधिकार की साक्षी के लिए क्या उसके पास कोई ताम्रपत्र है ?"

"लेकिन तुम अकेले ही कैसे उसका सामना कर सकते हो ?"

"है एक उपाय।"

"कौन-सा ?"

"कूटनीति का। रिंचन कोटारानी से विवाह करना चाहता है। उसको लालच दिखाया जाये, तो वह सहज ही जाल में फस सकता है। यदि हम कोटारानी का विवाह उसके साथ करा सकें तो वह मुझे अपनी सेना में प्रधान सेनापति का पद भी दे सकता है।"

"तो क्या वह सेना पूरी तरह तुम्हारे वश में हो जायेगी ?"

"ऐसा सभव न भी हुआ तो भी हम कई प्रकार से उसकी योजनाओं को नष्ट कर सकते है।"

"किस तरह यह कार्यक्रम आगे बढेगा ?"

"सबसे पहले कोटारानी की खोज की जाये। वह गगनगिरि के भवनों मे, जहा से उसका विवाह होने वाला था, छिपी पड़ी है या कही को निकल गयी'''।"

यही किया गया। एक गुप्तचर गगनगिरि भेजा गया। वह समाचार लाया कि कोटारानी को वहा से रिंचन धोखा देकर ले गया। पर वह उसके साथ विवाह के लिए राजी नही हुई। इसलिए उसने अपने ही निवास के एक कमरे मे उसे बदी बनाकर रख दिया। उसके भोजन और विश्राम की समुचित व्यवस्था है तो सही, पर वह केवल जीवन-धारण करने के लिए ही भोजन कर रही है। वह बराबर यही धमकी देती रहती है कि अनाहार द्वारा आत्महत्या कर लेगी।

इस सच्चाई से अवगत होने पर, अब रावणचद्र ने दूसरा मार्ग ग्रहण कर लिया। वह सीधा रिंचन के महल मे चला गया। रिंचन ने बड़े सद्भावपूर्वक उसका स्वागत किया और बोला, "मैं तो बहुत दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

"भाई के दु:ख से निवृत्त होकर ही मैं अब आपके पास आया हूं। कहिये, मैं किस सेवा के योग्य हू ?"

"देखो, तुम्हारी यह बहन कोटारानी स्वभाव की बड़ी हठी है। तुम क्या इसको सही मार्ग-दर्शन नही करा सकते ?"

"कोटारानी मेरी बहन नही है।"

"ओह भूल हुई! मेरा मतलब है, यह तुम्हारे भाई की लडकी। तुम्हारे भाई ने क्या इसके साथ मेरे विवाह को पूरी मान्यता नहीं दी थी ? आधा विवाह हो जाने पर कुछ दुष्टों ने विघ्न पैदा कर दिये, जिसके बीच मे पडकर तुम्हारे सज्जन भाई को अपने प्राण देने पडे। यदि तुम अपने भाई के वचन को पूरा कर सको, तो उनकी आत्मा को भी शांति मिलेगी और कश्मीर की प्रजा भी सुख-शांति को प्राप्त होगी। कोटारानी को अब मुझसे विवाह करने में क्या बाधा है ?"

"शायद चाचा रामचंद्र की मृत्यु से उनके मन में कोई प्रतिहिंसा घर कर गयी है।"

"क्योंकि वे मेरे ही हाथों से मारे गये। युद्ध में मारने को हत्या का नाम नहीं दिया जाता। मैं उस पंडित को मारने गया था, जिसने सैकड़ों लोगों के सामने मेरी चुटिया जड़ से उखाड़कर मेरा अपमान किया। जब तुम्हारे भाई ने नंगी तलवार लेकर मेरा सामना किया तो फिर क्या मुझे उनके सामने सिर झुकाकर अपनी बलि दे देनी थी! अपने प्राण हरएक को प्रिय होते हैं। तुम क्या कोटारानी को सुमति न दे सकोगे?"

"हां, मैं इसकी चेष्टा करूंगा।"

रिंचन रावणचंद्र के और निकट आ उसके कंधे पर हाथ रखकर कहने लगा, "देखो, तुमसे सही बात कहता हूं। इस देश में हिंदू और मुसलमान दोनों ही हैं। हिंदू उन्हें म्लेच्छ कहते हैं और मुसलमान इन्हें काफिर। ईश्वर का भय अगर इन दोनों में से किसीको होता तो इनमें ऐसा घमंड न उपजता। इनके इसी गर्व को तोड़ने के लिए मैं यहां आया हूं। मैं न हिंदू हूं, न मुसलमान। मैं इन दोनों के बीच की कड़ी हूं।"

"हो सकता है।"

"तुम कोटारानी को समझा सको तो ठीक है।" कहते हुए रिंचन ने अपने गले की माला में गुंथी चाभी से उस कमरे का ताला खोल दिया, जहां कोटारानी बंदिनी के रूप में थी।

रावणचंद्र साकल खोलकर द्वार के भीतर घुसना ही चाहता था कि रिंचन ने उसे रोकते हुए कहा, "ठहर जाओ, बहुत सावधानी से जाओ। मैं नहीं जानता कि उसके मन में क्या हो। एकाएक द्वार खोल देने से वह मेरे ऊपर झपट भी सकती है। रूप में वह अप्सरा है तो क्या, शक्ति में सिंहिनी भी है। फिर इतने दिनों से वह बंद कमरे में मेरे विरुद्ध प्रतिहिंसा के विचारों को ठोस करती जा रही है। इसलिए धीरे-धीरे द्वार खोलकर भीतर जाओ। मैं झट से द्वार बंद कर दूंगा।"

रावणचंद्र घबराकर एक ओर खड़ा हो गया। रिंचन ने थोड़ा-सा द्वार खोलकर भीतर देखा, "ठीक अवसर है। वह सो रही है। तुम झट से भीतर घुस जाओ।"

रावण ने ऐसा ही किया। रिंचन ने बाहर से द्वार बंदकर उसमें ताला लगा दिया।

रावणचंद्र ने देखा, सुंदर शय्या बिछी हुई थी, पर कोटारानी उसका तिरस्कार कर फर्श पर सोई थी। सिर के नीचे उसका एक हाथ पड़ा था। बालों की एक लट मुंह पर आयी थी। जो कवियों की इस उपमा को साक्षात् कर रही थी कि चंद्रमा किसी मेघ-जाल से बाहर को आ रहा है या मेघ का अवगुंठन उसे ढकने को बढ़ रहा है।

उसके निकट ही एक थाली में, कितने ही प्रकार के मेवे-मिष्टान्न और फल रखे हुए थे। जान पडता था कि उस मानिनी ने किसीमें भी हाथ नहीं लगाया था।

सुंदरी गहरी नींद में थी या उसने बहाना कर लिया था, वही जाने। रावणचंद्र कुछ नहीं बोला। मगर इस तरह अकेलेपन से घिरकर उसका एक-एक क्षण बहुत लंबा होकर बीतने लगा था। उसने मन में सोचा—उठाना तो नहीं चाहिए इसे। उसके साथ कैसे बातें आरंभ की जायें, यही सोचता रहा।

तभी कोटारानी की आंखें खुल पड़ीं। उसने मुख पर आयी हुई रेशमी बालों की लट एक हाथ से कान के पीछे खोंस ली। उठ बैठी और किसीको सामने देख अचकचाकर अपना अस्तव्यस्त परिधान ठीक कर लिया, "कौन, चाचा? तुम्हें आये कितना समय हो गया?"

"अभी तो आ रहा हूं।"

"तुमको क्यों जीवित ही छोड़ दिया उस पापी ने?"

"ऐसे अपशब्द क्यों निकालती हो मुख से?"

"चाचा जी, क्या तुम्हें मेरे साथ बातें करने के लिए कोई घूस दी गयी है?"

"घूस कैसी? क्या अपने मन से तुम्हारी कुशल पूछने के लिए आना, मेरे लिए स्वाभाविक न था?"

"कुशल मिल जाती तुम्हें अब तक। मेरा वह खड्ग, चाचा ने जो मुझे भेंट दिया था, और वह कटार जिसका नाम मैंने तक्षक रख दिया था, दोनों बलपूर्वक मुझसे छीन लिये गये। अब मैं अपने दोनों हाथों में नख

बढा रही हू, सिंहिनी बन जाने के लिए, पर कब तक बढेंगे ये ?"

"तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ?"

"ठीक ही तो है ! मैं चाचा को अंतिम बार देख भी नही पायी, ऐसी भाग्यहीन निकली। मैंने पहले ही उनसे कह दिया था कि मैं उस म्लेच्छ से विवाह नही करूगी। उस म्लेच्छ ने उनकी हत्या कर क्या अपनेको राक्षस नही सिद्ध कर दिया ?"

"पर युद्ध-क्षेत्र में न तो कोई मरने वाला होता है,न ही मारने वाला। फिर किसीके ऊपर क्या दोपारोपण ? सब होनहार की बात है। सब कुछ करने वाला केवल एक वही ईश्वर है। किसीका कोई अपराध नही।"

कोटारानी के मुख पर एक क्षीण हसी की रेखा खिल पडी, "तब चाचा जी, मैं अपने सदेह में स्थिर हो जाती हू।"

रावणचद्र कुछ हतप्रभ होता हुआ बोला, "सदेह कैसा ?"

'यही कि तुम पडित होकर आये हो।"

"कैसी पडिताई ?"

"यही कि वाक्‌चातुरी से सत्य पर परदा और असत्य को प्रकाशित भी किया जा सकता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय आकाश मे यह देखा जाता है कि अधेरे और उजाले में कोई स्पष्ट विभाजक-रेखा नहीं है। फिर क्या वास्तविकता यह नही कहती कि अधेरे को भी उजाले ने ही उपजाया है। फिर भी तुम कहो कि आये किस मतलब से हो ?"

"नही, मैं अपने अंतरतम मन में कश्मीर के राजसिंहासन में यह सब नही चाहता।"

"यदि तुम रिंचन के राज्याभिषेक मे फूलों की वर्षा करने वाले नहीं हो तो क्यो उसके फूल-वासर की निशा मे चादनी बिछाने आये हो ? पर मैं निश्चय कर चुकी हू। मैं यदि किसी शस्त्र की सहायता से अपनी सास के धागे को नही काट सकती तो अनाहार रहकर भी मुझे वह इष्ट मिल जायेगा।"

"तुम समझती क्यों नही, मैं तुम्हारे पास इसीलिए आया हूं कि तुम आत्महत्या के बदले अपने चाचा की हत्या का बदला लो।"

"पर मैं समझी थी…।"

"तुम्हारी वे उज्ज्वल और तीखी आखें जो लोहे की दीवार को भी छेद-कर दूसरी ओर देख लेती थी, आज ऐसी निस्तेज हो गयी है कि उन्हें अपना हाथ भी नहीं दिखाई दे रहा है। न जाने तुमने कब से आहार ग्रहण नही किया है। तुम्हारे वे गुलाब के फूलों-से आरक्त कपोल, उनमें जो गड्ढे पड गये है, वहा गौरैया तिनका लेकर अपना घोसला भी बना सकती है।"

"आज तुम यह कैसी कविता करने लगे ?"

"जान पड़ता है, अब तुमने दर्पण मे अपना मुख देखना भी पाप समझ लिया है। इसीलिए मैं अपने शब्दो में तुम्हारा प्रतिबिंब दिखा रहा हू। कैसा सुदर स्वर था तुम्हारा ! जब तुम किसीसे असंतुष्ट भी होती थी तो जान पड़ता था मानो किसी वासंतिक रागिनी के सुमधुर स्वर तुम्हारे शब्दो में झर रहे हैं। आज कोई दु सह वेदना उसमें प्रतिफलित है।"

"एक ही भावना मे क्या कोई सदैव स्थिर रह सकता है ?"

"तो अब इस भावना को भी दूर करो। मैं तुम्हारे लिए सूर्योदय लेकर आया हू !" रावणचद्र ने फलों सहित थाली की चौकी उसकी ओर बढ़ायी, "देखो ये अगूर खट्टे है क्या ? एक चखो तो सही।"

बरबस उसका हाथ एक अगूर पर खिच गया। वह बहुत मीठा था। उसने कई अगूर खा लिए। फिर उसे याद आया, "यह क्या किया, तुमने मेरा निश्चय तोड दिया ! भूख बहुत दिनो तक सहन की जा सकती है, पर प्यास···।"

रावणचद्र ने तुरत हा सुराही से गुलाबजल का एक पात्र भरकर उसका ओर बढा दिया और वह उसे पी गयी। फिर लबी सास लेकर बोला, "मैं अपने ही प्रतिबध मे टूट गयी।"

"इस सबके पीछे क्या किसी और का हाथ नही ?"

"हा चाचा, क्या तुमने कभी यह भी देखा कि व रार्थिनी कन्या अपने द्वार-पूजित पति का तिरस्कार कर आपदाओ से भरे जंगल को भाग गयी, निबिड़ अधकार मे ? वहा निश्चय मेरा था तो यहा क्या हुआ ? ठीक उसी द्वार-पूजा के समय मैं कृतसंकल्प होकर बैठी थी, तो फिर क्यों दूसरी ओर से वही विघ्न बीच मे आ गया ?"

"इसलिए इस बात को मानना पड़ेगा कि हम करने वाले कौन हैं ? असली कर्त्ता कोई और है। तुमने न जाने कब से खाना नहीं खाया है।" रावणचंद्र ने इस बार मिठाइयों की थाली उसकी ओर बढ़ा दी।

लोहे के टुकड़े जैसे चुंबक पर खिंच जाते हैं, ऐसे ही कोटारानी का हाथ मिठाइयों पर टूट पड़ा और पेट की ज्वाला में वह उनकी आहुति देने लगी।

एकाएक उसे कुछ याद आया और उसका हाथ रुक गया। रावणचंद्र बोला, "शरीर की शक्ति भोजन है और मन शरीर के [illegible] अपने संघर्षों से लोहा लेता है।"

"मेरी देह का एक-एक भाग [illegible]।"

"भूमि त्यागी-तपस्वियों की [illegible]।"

कोटारानी ने उठकर [illegible], "हां, मैं महारानी हूं।"

"भूमि की कठोरता [illegible] इस सुकोमल शय्या पर शांत हो [illegible]!"

कोटारानी शय्या की [illegible], तुम्हें किस पद का प्रलोभन दिया [illegible]?"

"जनता के हित [illegible]।"

कोटारानी [illegible] अपनी प्रतिष्ठा तो [illegible] के घातक के चरणों पर [illegible]।"

तो कश्मीर को एक बार लूटकर चला भी गया और उसने अपने पाप का फल भी पा लिया। पर रिंचन कश्मीर को नित्य के लिए अपना अधिवास बनाकर उसको धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और कलात्मक गतिविधियों को घुन की तरह भीतर ही भीतर कुरेदकर विनष्ट कर देगा।

और जब उन्होंने यह सुना कि वह हिंदू महिला कोटारानी को बलात् अपनी अर्द्धांगिनी बनाने वाला है, तो उनकी प्रतिहिंसा में और भी आहुति पड़ गयी। पहली बार के नियोजित विवाह में विघ्न डालने वाला वह पुरोहित लावण्यकों का ही अपना आदमी था। अब दूसरी बार विवाह की तैयारी से लावण्यकों में फिर बड़ा रोष फैल गया।

उस असंतुष्ट दल का नायक राष्ट्रभानु नामक एक ज्योतिपुरुष था। उसे इंद्र के समान वीर और उच्चआकांक्षी तथा सूर्य के सदृश तेजस्वी कहा जाता था। उसने गगनभेदी ऊंची आवाज में घोषणा की, "नहीं, यह विदेशी म्लेच्छ, हमारी इस पवित्र देवभूमि को रौंद नहीं पावेगा। उठो, सब मिलकर उसे मिटाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दो।"

उसने हरिपर्वत पर अपने जाति-भाइयों को ही संगठित नहीं किया, वरन् जिन्होंने भी जननी-जन्मभूमि के उद्धार की शपथ ली, उन सभीको अपने दल में मिला लिया।

एक दिन जब वे लोग दुर्ग में सभा कर योजनाएं बना रहे थे, उनके एक अधिनायक ने कहा, "पर एक भारी कठिनाई है···"

राष्ट्रभानु बोला, "कठिनाई तो इस शब्द के भीतर ही है। बाहर अब कहां है ? हमारी पताका की छाया में जितने नवयुवक भरती हो गये हैं, उसकी क्या हमें कल्पना भी थी ?"

सेनापति बोला, "हां महाराज, कठिनाई उन्हींके लिए अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह की है।"

"हो सकती है ! पर युद्ध में विजय केवल शस्त्र पर ही निर्भर नहीं। यदि हमारे मन में वीरता है, तो हम रिक्त हाथों, अपनी हुंकार-गर्जना से भी शत्रु को पराजित कर सकते हैं।"

इसी समय प्रहरी ने आकर निवेदन किया, "महाराज, एक व्यक्ति सभा में प्रवेश मांगता है, किसी आवश्यक काम के लिए।"

"शत्रु के पक्ष का तो नहीं ?"

"हिंदू ही जान पड़ता है। अपना नाम बताता है तुक्का !"

"तुक्का ? रिंचन का मंत्री !" एक ने कहा।

"उन्हें आदरपूर्वक ले आओ। संभव है, शत्रु का कोई समझौता प्रस्ताव आया हो। युद्ध से विरति हमारी सभ्यता की पहचान है।"

"रिंचन बड़ा कूटनीतिज्ञ है, और तुक्का भी उसका नमक खाकर उसीमें भीग गया है। यदि वह हमारी सेना, शस्त्र-संग्रह और रसद का लेखा-जोखा लेने आया हो तो ?" एक पार्षद ने पूछा।

"बुला लाओ, हम समझ से काम लेंगे।"

सेनापति स्वयं जाकर उसे भीतर बुला लाया। राष्ट्रभानु ने उसे अपने ही निकट बैठाकर सम्मान दिया, "कहो मित्र, तुम्हारे अभिभावक ठीक तो हैं ?"

"नहीं ! भगवान करें वे अपनी चेष्टाओं में विफल हों।"

सभी इस उत्तर को सुनकर चकित रह गये। राष्ट्रभानु ने पूछा, "क्यों ?"

"क्योंकि उसने हिंदुत्व का जो स्वांग रचा था, उसे भी अब मिटाकर रख दिया है। नियमपूर्वक संध्या-प्रभात को बुद्ध की प्रतिमा के सामने न जाने क्या मिनमिनाता रहता है।"

एक पार्षद बोला, "वही, ॐ मणि पद्मे हुं। न जाने वह पद्म कौन-सा है और मणि कैसी ?"

तुक्का ने उत्तर दिया, "मणि वह अपनेको समझता है, और पद्म है कोटारानी। अब फिर कोटारानी के साथ उसका विवाह होने वाला है।"

"क्या वह राजी हो गयी ?"

राष्ट्रभानु के मंत्री ने कहा, "तुक्का महोदय, आप भी तो कभी उसके पाणिप्रार्थी थे ?"

तुक्का—लोग जो भी अफवाहें उड़ा दें, कौन उनका मुख बंद कर सकता है ? रावणचंद्र ने कोटारानी को उसके लिए सहमत कर अपनी जान बचा ली।

"हां, उसे शूली दी जाने वाली थी।"

"उसके बदले अब उसे लाट का परगना तथा लद्दाख प्रांत जागीर में दिया जाने वाला है और वह बनाया जायेगा रिंचन का प्रधान सेनापति।"

राष्ट्रभानु चिल्लाया, "धिक्कार है उसके इस लालच को। बड़े भाई के हत्यारे की सेवा करने से अच्छा था वह वितस्ता में डूब मरता या किसी ऊंचे पर्वत से कूदकर आत्महत्या कर लेता। सारे राष्ट्र के कलंक के रूप में उसने कोटारानी को उस म्लेच्छ से बंध जाने को राजी कर लिया।"

एक मुंहफट ने कह ही तो दिया, "तुक्का महोदय, यह रिंचन की कूट-नीति ही है कि वह अपने बाद कश्मीर का स्वामित्व एक हिंदू को ही दे रहा है। और पहले सेनापति की जगह रावणचंद्र की नियुक्ति से आपका आसन हिल गया! इसीलिए आप हम लावण्यकों के दल में उजाला करने आ गये।"

एक दूसरे ने पूछा, "तो विवाह कब होने वाला है?"

इसका उत्तर मिलने से पहले ही एक लावण्यक बाहें समेटकर कहने लगा, "हम उसपर आक्रमण करने का मुहूर्त ढूंढ रहे हैं, क्यों नहीं अब उसके विवाह के मुहूर्त में ही उसपर आक्रमण कर उससे मंत्री रामचंद्र का बदला लें और कोटारानी का हरण कर ले आवें?"

तुक्का ने कहा, "इसी आशंका से तो अब उसका विवाह अधिक धूम-धाम से नहीं मनाया जा रहा है। चुपचाप महल के भीतर किसी कमरे में बिना बाजे बजाये यह रस्म अदा कर ली जायेगी।"

राष्ट्रभानु बोला, "तो आप क्या सचमुच कश्मीर के उत्थान की भावना से आये हैं?"

"भगवान जानता है।"

"यदि आपको पद का कोई लालच नहीं है, तो रहिये हमारे बीच में।"

तुक्का का अनुमान बिलकुल ठीक ही था। जहां कोटारानी बंदिनी थी, उसी कमरे में उसका विवाह हो गया। पंडित-पुजारी कोई भी न था वहां। केवल चार ही व्यक्ति। आमने-सामने रिंचन और कोटारानी बैठे थे, कन्यादान करने वाला था रावणचंद्र और हाथ बंटाने को खड़ी थी एक दासी।

हिंदू धर्म की परंपरा रखने को बीच में साक्षी के लिए आग जलाई गयी थी; और रिंचन ने अपने धर्म की शून्यता भरने को चौथी दिशा में रख दी थी बुद्धदेव की एक प्रतिमा।

रावणचंद्र ने उठकर भगवान को हाथ जोड़े। फिर अग्नि, बुद्ध और वर-वधू के चारों ओर परिक्रमा करते हुए कहा, "हे भगवन्, तुम सभी जगह व्याप्त हो, इस विवाह की यज्ञवेदी में भी प्रतिष्ठित होओ। वर-वधू को सुख-सौभाग्य और दीर्घायु का आशीर्वाद दो।"

फिर दूसरी परिक्रमा करते हुए उसने रिंचन से कहा, "मैं इस कन्या के माता-पिता का प्रतिनिधि होकर इसे तुम्हें सौंपता हूं। तुम सुख और दुख में एक-दूसरे के सहभागी होकर रहो। जीवन की यात्रा में छाया की तरह अभिन्न सहचर बनो।"

उन्होंने एक-दूसरे के गले में अपनी-अपनी मालाएं पहना दीं। फिर रावणचंद्र ने तीसरी परिक्रमा करते हुए कहा, "अब तुम इस कन्या का हाथ पकड़कर अग्नि की सात परिक्रमा करो।"

आगे-आगे वधू का चाचा चला। फिर कोटारानी का हाथ पकड़ रिंचन अग्नि की परिक्रमा करने लगा। तीन परिक्रमाओं में उसने कहा, "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।" अगली तीन में फिर यही कहा, और सातवीं परिक्रमा में वह मन ही मन बोल उठा, "कोटादेवीं शरणं गच्छामि।"

बस, विवाह समाप्त।

रिंचन के विवाह का यह समाचार जब जनता में फैला तो कश्मीर की सारी हिंदू प्रजा उसका विरोध करने लगी। अब तो रिंचन को कश्मीर में अपना आधिपत्य जमाना बड़ा कठिन हो गया।

शाहमीर भी अपना दल बढ़ाता जा रहा था। पर उसके मुसलमान साथी इतने समर्थ नहीं थे कि शासन हथिया सकें। हिंदुओं के बीच सेना का संग्रह कर लेना उनका दुष्प्रयास ही था।

इस कठिनाई को हल करने के लिए उसने उस बौद्ध के साथ समझौता कर लेना उचित समझा। साथ ही रिंचन भी यह समझने लगा था कि यदि शाहमीर से मेल-जोल बढ़ा लिया जाये तो इन हिंदुओं का घमंड बड़ी

आसानी से तोड़ दिया जा सकता है।

पर यह हो कैसे ? केवल सहदेव का राजमुकुट और वेशभूषा पहन लेने से क्या रिंचन कश्मीर का अधिपति हो गया ? नहीं, कोटारानी के भीतर महारानी बन जाने की इच्छा से उसका दम घुटने लगा।

विवाह के पश्चात् रिंचन दिन-रात कोटारानी की ही परिक्रमा में रह गया। एक दिन ऊबकर वह बोली, "तुम्हारे साथ विवाह कर मैंने बड़ी भूल की।"

"क्यों-क्यों, ऐसा क्यों कहती हो ?"

"तुमने महाराज सहदेव का राजमुकुट दिखाकर मुझे धोखे में रख दिया। मैं कहती हूं, यह राजमुकुट तुमने किसी प्रकार छल-प्रपंच से प्राप्त किया है।"

"क्यों, तुम्हारे पास इसकी साक्षी क्या है ?"

"साक्षी यही है कि तुम इसको धारण कर कश्मीर की प्रजा के पिता बनकर उसके संरक्षण को बाहर निकलते न कि एक नारी के वस्त्रों में अपना मुंह छिपाते।"

"बाहर मेरे विरोधियों की संख्या बहुत है, उनका सामना करने को मेरी सेना पर्याप्त नहीं है।"

"मैं कहती हूं, सेना की आवश्यकता लूटने के लिए होती है। राजा तो प्रजा का रक्षक है। तुम्हारे भीतर उसकी पालना के लिए सच्ची भावना होनी चाहिए।"

"भावना की कमी कुछ भी नहीं है। स्थिति को भी तो समझ लो। तुम्हारे साथ विवाह हो जाने से मेरे विरोधियों ने अपढ़ प्रजा के भीतर साम्प्रदायिकता का विष फैला दिया, जिससे तमाम हिंदू मेरे विरोधी हो गये। मेरी नौकरी में अच्छे-अच्छे सेवक थे, वे सब मुझे छोड़कर चले गये। इसी प्रकार हिंदू सैनिक भी जाकर लावण्यकों की सेना में भरती हो गये।"

"तुम भी मुझे सहदेव के ही समान डरपोक जान पड़ते हो। मैं रानी बनने के लिए उत्पन्न हुई हूं। तुम्हारे बल पर नहीं बनूंगी। मुझे अपना मार्ग स्वयं ही बनाना है। मेरी वह कटार कहां है ? लाओ, मुझे दो।"

"तुम्हारी कौन-सी कटरा ?"

"वही—तक्षक जिसका नाम है। लाओ वह मुझे दो, मैं स्वय उसे लेकर श्रीनगर की सड़कों पर अपने राजत्व की घोपणा करुगी। मैं कश्मीर की दीन-दुखी प्रजा को जीवन का यह सदेश सुनाऊगा कि हे निराश और विपन्न भाई-बहनो, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे सारे दु ख दूर करने की शपथ लेकर आयी हू।"

रिंचन कई कटारें निकालकर ले आया। पर कोटारानी ने उनमें से किसीको भी नही स्वीकारा, "मैं नही जानती कि तुमने उस कटार को कहा फेंक दिया। मैं निरंतर उसे अपने सिरहाने रखती थी। जब तुमने बदी बनाकर कारागार मे रख दिया था तब कही मैं आत्महत्या न कर लू इस भय से उसे मुझसे छीनकर छिपा दिया गया।"

"तो उसीमे ऐसी क्या बात है ? कितने ही खड्ग है, इनमे से किसी-को छांट लो।"

"वह साक्षात् देवी भवानी के ही द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है।"

रिंचन हसने लगा।

'तुम्हें उस खड्ग में अविश्वास हो गया ?"

"उतना ही जितना इस बात पर कि तुम अपनी घोपणा के पीछे सारे कश्मीर का जन-मन अधिकृत कर लोगी। मैं तुम्हें एक और उपाय बताता हू। यदि हम शाहमीर के साथ कोई समझौता कर ले ?"

"उसके साथ हमारा क्या समझौता ? उसका धर्म अलग, हमारा धर्म दूसरा।"

"धर्म अपने घर-भीतर की वस्तु है और राजनीति बाहरी लोक-ससर्ग की। फिर धर्म क्या केवल एक ही सच्चाई का प्रकाश नही है, जो सभी धर्मों की रीढ़ है ? फिर समझौता तो विरोधी भावनाओं में ही होता है। एक ही प्रकार के विचारधारावालों में तो स्वभावत ही समझौता है।"

"तो उसके साथ क्या समझौता किया जायेगा ?"

"यही कि हम दोनों अपनी-अपनी शक्ति एक ही मे समन्वित कर लेंगे

तो बड़ी सरलता से कश्मीर के राजसिंहासन पर अधिकार हो जायेगा।"

"यदि सिंहासन पर बैठने का हठ उसीने किया तो फिर मेरा क्या होगा?"

"सिंहासन पर अधिकार हमारा होगा। उसे प्रधान सेनापति बना दिया जायेगा।"

"लेख की शक्ति से खड्ग का बल अधिक होता है। उसे प्रधान सेनापति बना देने पर क्या वह किसी दिन तुम्हारा राजमुकुट भी अपना न बना लेगा? फिर इस समय तुमने प्रधान सेनापति का पद मेरे चाचा को सौंप रखा है।"

इतने में एक दासी कोटारानी की कटार तक्षक को ढूंढकर ले आयी। उसने म्यान से निकालकर उसे पहचान लिया। प्रसन्नता के साथ उसे हवा में नचाकर बोली, "अब मुझे कौन रोक सकता है? लाओ मेरा घोड़ा कहां है?"

रिंचन ने उसके हाथ की कटार छीन ली, "पागल हो गयी हो क्या? तुम गर्भवती हो, तुम्हारे पैर भारी हैं। तुम कैसे घोड़े की सवारी करोगी? तुम्हारे पेट में कश्मीर का भावी उत्तराधिकारी है।"

"फिर मुझे स्वप्नों में मिला हुआ वरदान क्या झूठा है? मैं महारानी कैसे बनूंगी?"

"मेरे पराक्रम से अवश्य ही तुम्हें वह पद प्राप्त होगा।" कहते हुए रिंचन ने उसकी वह कटार सामने दीवार पर टांग दी।

"नहीं, यह मुझे दो। मैं इसे अपने सिरहाने रखूंगी।"

"सिरहाने यह फिर रख देने से स्वप्न में ही चला जायेगा। इसलिए इसे निरंतर तुम्हारी आंखों के सामने ही चमकता रहना चाहिए।"

कोटारानी को रिंचन की बात माननी पड़ी। मातृत्व की रक्षा के लिए उसे कुछ दिन तक महारानी के पद की आकांक्षा से अवकाश लेना पड़ गया। वह अपने सामरिक उल्लास में टूटकर विश्राम के लिए शय्या की शरण में चली गयी।

फिर बहुत समय पश्चात् शाहमीर के साथ समझौता के बीज में अंकुर निकल आया। रिंचन ने कोटारानी की सहमति से विशेष दूत द्वारा उसके

पास यह राज-पत्र भेजा।

कश्मीर के महाराज सहदेव मरने से पहले महाराज रिंचन को अपना उत्तराधिकार सौंप गये हैं। इसकी साक्षी उनका वह राजमुकुट है जो उनके अधिकार में सुरक्षित है। उसीके आधार पर कश्मीर के सुयोग्य सरदार शाहमीर की भुजाओं के बल और उनके मन की उदार निष्पक्षता का गुणगान किया जाता है। कश्मीर की पवित्र भूमि विदेशी लुटेरे की बर्बरता से पदाक्रांत हुई है। उसका अभी तक जीर्णोद्धार नहीं हो सका है। जनता नंगी-भूखी और निराश्रय है। आपसी गृहयुद्धों से उसकी और भी दुर्दशा की जाये यह किसी भी समझदार व्यक्ति को असह्य है। इसलिए कश्मीर के महाराज रिंचन, सरदार शाहमीर के साथ किसी समझौते पर आने के लिए खुले हाथों और उदार दिल से तैयार हैं। इसके लिए गगनगिरि के दुर्ग में उन्हें सादर निमंत्रित किया जाता है। कल वैशाखी पूर्णिमा के अवसर पर वे बुद्धदेव के नवनिर्मित मंदिर में पधारें। अस्त्र-शस्त्र के बदले दोनों अपने हाथों में फूलों की माला लिये रहेंगे। समझौता हो जाने पर दोनों अपनी-अपनी मालाएं बुद्धदेव के गले में पहना देंगे।"

शाहमीर ने उस पत्र को पढ़वाकर ध्यानपूर्वक सुना। उसका लिखित उत्तर भेजने की कोई जरूरत नहीं समझी गयी। शाहमीर ने अपने मंत्रियों के साथ सलाह की। एक ने कहा, "यह सरासर कुफ्र है। हम बुतपरस्त हैं क्या जो बुत के गले में माला पहनावें?

शाहमीर ने दूत के द्वारा यही जवाब भिजवाया कि अगर तुम्हारे महाराज हमारे यहां आने को तैयार नहीं हैं, तो हमारे शहंशाह भी वहां कैसे आ सकते हैं? वे बुतपरस्ती के लिए मंदिर में नहीं जा सकते। हां, मुल्क की भलाई अपनी हर सांस में चाहते हैं। इसलिए झेलम के किनारे वह जो वंजारों की लाल सराय है, वहां बैठकर किसी भी दिन दो-दो बातें हो सकती हैं।

महाराज रिंचन को यह प्रस्ताव उचित ही जान पड़ा। जगह बदल दी गयी पर दिन वही रहा। रात को किसी पक्ष की तरफ से कोई धोखा

न हो इसलिए दिन का समय रखा गया। दोनों ने बिना कोई शस्त्र लिये मिलना तय किया। दोनों के अंगरक्षकों ने दोनों की तलाशी ली और वे सौ-सौ गज की दूरी से देखते रहे।

लाल सराय दो दिन पहले से झाड़-पोंछकर साफ कर दी गयी थी। उसके चबूतरे पर एक दरी, फिर उसपर एक बढ़िया कालीन बिछाई गयी। दोनों प्रतिनिधि वहा नियत समय पर आ पहुचे। पहले एक-दूसरे के गले मिलने के बहाने दोनों ने एक-दूसरे के वस्त्र टटोलकर देख लिया कि कहीं किसीने कोई खतरनाक शस्त्र तो नहीं छिपा रखा है।

मसनद पर विराजते हुए शाहमीर ने पहले मुह खोला, "मैं भी बहुत दिनों से यही सोच रहा था कि इस मुल्क की भलाई के लिए कौन-सा रास्ता निकाला जाये।"

रिंचन—इसीलिए हम लोग राजभवन के सुसज्जित वातावरण को छोड़कर इस वीरान सराय मे नीम की पत्तियों और गोबर-भरे चबूतरे की ईंटों पर एक-दूसरे से मिलने को राजी हो गये।

शाहमीर—क्यों नही? अंत मे हमें भी ऐसे ही किसी चबूतरे के नीचे हमेशा के लिए सो जाना है और उस चबूतरे की धार पर जानवर अपनी गरदनें घिसकर ईंटों को इकट्ठा भी न रहने देंगे।

रिंचन—हां शाहजी, इसी सच्चाई पर ध्यान रखकर हमें कश्मीर के इन गरीब लोगो के लिए कोई सुभीता ढूढना है,कि ये चलते-फिरते कंकाल कम से कम आधे पेट रोटी और घुटने तक का कपड़ा तो पा सकें।

शाहमीर—तो क्या सोचा है आपने?

रिंचन—कि देश मे जो जगह-जगह युद्ध का भय फैला है, जगह-जगह लूट-मार की संभावनाए हैं, उसके बदले शांति हो और किसान-मजदूर बेफिक्री से अपने काम करें। कारीगर और व्यापारी भी निर्भय हो जायें।

शाहमीर—पर यह हो कैसे? कुछलोग कोठियों में बैठे दास-दासियो से सेवित होकर रंगरेलिया करें, चैन की बांसुरी बजावें और कुछ दिन-भर के परिश्रम से भी रात को सूखी रोटी न पा सकें…।

रिंचन—तो कैसे सबका भला हो, इसके लिए उपाय सोचने को मैं अपने राजदरबार में आपको ऊंचा पद देने को तैयार हूं।

शाहमीर—मुझे क्या सिर्फ अपना स्वार्थ सिद्ध करना है ? मैं तो सबसे पहले अपने साथियों का भला चाहता हूं ।

रिंचन—तो तुम्हारे सभी साथियों को उनकी योग्यता के अनुसार किसीको सेना में, किसीको राजदरबार में, टकसाल में, खजाने में, शस्त्रागार मे, चुंगी में, भंडार मे नौकरिया दी जा सकती है ।

शाहमीर—क्या सिर्फ रुपये-पैसे से, वेतन-नौकरी से सब खुश हो जायेंगे ? न ही सभीको मंत्री बनाया जा सकता है और न अधिकारी । छोटे बड़ो की ईर्ष्या करेंगे, बड़े उनसे बड़ों की और यह आग फैलती ही जायेगी ।

रिंचन—तो फिर सबके भीतर संतोष और सुमति का उदय कैसे हो ? मैंने इसी घड़ी से आपको अपना प्रधानमंत्री बना दिया । राज्य-भर में शाति फैलाने के लिए आप जो भी उपाय निकालेंगे, उनको स्वरूप दिया जायेगा ।

शाहमीर—शाति फैलेगी सबको एक-सा बनाकर । मेरा मतलब है, सबको एक ही धागे में गूंथकर ।

शाहमीर ने आकाश की ओर अपनी तर्जनी उठाई ।

"मैं नही समझा । किस धागे मे गूथकर ?"

"वह धागा है, हम सबका मुह एक ही तरफ को कर दिया जाये, यानी खुदा के खौफ की तरफ ।" शाहमीर ने इस बार अंगुली रिंचन की तरफ की । सूर्य उस ओर ढलने लगे थे, "वह धागा है मजहब का, उसीसे हमारे भीतर एकता होगी ! तभी शाति फैलेगी, संतोष फैलेगा । समझ गये ।"

रिंचन—आपका मतलब है; हम सभी मुसलमान हो जाये ? पर सबके सब मुसलमान हो कैसे सकते है ? सबकी अपनी-अपनी हठधर्मी है, अपने-अपने अंधविश्वास । केवल मेरे लिए ही आप चाहें तो कुछ कह सकते हैं । देश की भलाई के लिए मैं बड़े से बड़ा बलिदान कर सकता हू ।

शाहमीर—हां, पहले आपसे ही मेरा मतलब है । जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी होती जाती है । आप अगर मुसलमान हो जाने को राजी हैं तो मैं बड़ी खुशी से आपको कश्मीर का महाराजा मान लूगा । आपके

प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त यह मेरा पहला फरमान है। आप मानें या नही।

रिंचन—मैंने तो मान लिया। पर मेरी अर्द्धांगिनी, उनका अभिमत भी तो मुझे लेना होगा।

शाहमीर—इस समय भी क्या आपका और उनका मजहब एक है? सिर्फ आपसे ही मतलब है। आप ही उत्तर दीजिये, क्या आप मुसलमान हो जाने को तैयार हैं? यही उपाय है शांति का। और समृद्धि शांति के ऊपर ही खड़ी।

"वह समृद्धि कश्मीर के प्रत्येक गृहपति को प्राप्त हो।"

दोनो एक-दूसरे से विदा होकर अपने-अपने अंगरक्षकों के साथ हो लिए।

शाहमीर के साथियों ने पूछा, "क्या कोई समझौता हुआ?"

शाहमीर ने प्रसन्नता से उत्तर दिया, "हां क्यों नही? उसने मुझे अपने प्रधानमंत्री का पद दिया, तो मैंने उससे बुतपरस्ती छोड़कर एक खुदा की शरण जाने का वचन ले लिया।"

उधर रिंचन के साथियों ने पूछा, "आपके चेहरे पर प्रसन्नता की रेखा नही चमकती। क्या वह राजी नही हुआ?"

"उसने मुझे ही राजी कर लिया?"

"क्या राजसिंहासन छोड़ देने को?"

"नही, अपना 'धर्म छोड़ देने को।" कहकर रिंचन उदास हो गया। कुछ भी नही बोला गया उससे।

साथियों में से बहुतो ने मन में सोचा, धर्म तो यह छोड़ ही चुका है, कोटारानी के लिए।

अंत में वहा उस सूनी सराय मे चबूतरे की दरी और कालीन लाद ले जाने के लिए चरमराती हुई एक बैलगाड़ी आ पहुंची। उसमें गाड़ीवान के सिवा दो कारकुन भी थे।

दोनों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

एक ने कहा, "अरे, यह मिठाई की तश्तरी भी ज्यों की त्यों रखी है और यह फलों की थाली भी वैसी की वैसी ही। न तो इनके ऊपर से कोई

चीटियों की पलटन दौड़ी, न ही कोई मक्खिया भिनभिनाई।"

दूसरे ने पानक के बर्तनों पर हाथ मारकर कहा, "अरे इन बर्तनों को भी मैंने सूंघ लिया, इनमें कुछ भी नही उडेला गया है और यह कलश उतना ही भारी है, जितना रखते समय था।"

पहला—क्या उनकी बातें इतनी जरूरी हो गयी कि इधर दृष्टि ही नही खिंची किसीकी ?

दूसरा—या एक को इसमे किसी मिलावट का शक हो गया या दूसरे ने बिना मेहमान के हाथ बढाये अपनी उदरपूर्ति असभ्यता समझी।

पहला—पर अगर हम इनको ज्यों का त्यो लौटा ले जायें, तो क्या समझा जायेगा ?

दूसरा—सरासर हमारी मूर्खता !

वे दोनों उस सामान को सराय के पीछे ओट में ले गये। उन्होंने गाड़ीवान को आवाज दी कि वह दरी-गलीचों को झाड़-पोंछकर तहकर गाड़ी में लाद ले।

पहला कारकुन बोला, "दरी-गलीचे जैसे आये थे, उनका वैसे ही जाना ठीक है, लेकिन तश्तरियों और कलशों का अछूता ही चला जाना इस बात को साबित करेगा कि उन दोनों के बीच मे कोई दोस्ती नही हुई।"

दूसरे ने कहा, "तो क्या हमारे और इनके बीच मे भी कोई दोस्ती न हो ?"

"अवश्य ही होनी चाहिए।" कहते हुए दूसरा जैसे ही थालियो की ओर बढा था कि बीच में रस के कलश पर उसकी ठोकर लग गयी और वह लुढ़कता हुआ चला नीचे वितस्ता नदी के संगम को।

कलश को तो उसने डूबने से पहले ही बचा लिया, पर उसके भीतर की सारी सुधा उस बालू-भरी भूमि पर बह गयी, जहां सिंच जाने को कोई हरियाली भी न थी।

दोनो ने संतोष की सांस ली, "कोई चिंता नहीं। कलश के भीतर की वस्तु उन दोनों महाराजाओं ने पी या हमने, इसका कोई लेख नही। यह सुवर्ण का कलश कट जाता हमारे वेतन मे से। पड़ जाते लेने के देने !"

अब टूट पड़े दोनों मिठाई और फलों पर। जब सब कुछ साफ हो गया, तो एक बोला, "गाड़ीवान के हिस्से का ?"

दूसरे ने जवाब दिया, "हिस्सा तो यह सिर्फ दो ही सरदारों का था, वे दो समझ लिए जायें या हम दो।"

उधर से गाड़ीवान चिल्लाया, "गाड़ी लद गयी।"

"ले चलो !" एक ने कहा।

दूसरा बोला, "अभी ठहर जाओ ! हम दोनों पैदल भी चले जायेंगे, मगर ये खाली बर्तन किसके पैरों जायेंगे ?"

जब रिंचन का रथ आधे ही रास्ते पर था, महल से एक संदेशवाहक दौड़ा-दौड़ा चला आ रहा था। उसने हाथ उठाकर रथ रोक लेने का संकेत दिया।

रथ रोक लिया गया। वह बोला, "महाराज को बधाई है। महारानी ने पुत्र प्रसव किया है। माता और पुत्र दोनों प्रसन्न हैं। महाराज की जय हो !"

रिंचन के मन में धर्म-परिवर्तन की जो दुविधा छा गयी थी, वह उस शुभ समाचार से तिरोहित हो गयी।

महल में प्रवेश करते ही चारों ओर से उसके ऊपर मंत्री-पदाधिकारियों, दास-दासियों की बधाइयों के फूल बरस पड़े। सबको केवल जुड़े हाथों से उत्तर देता हुआ वह अंतःपुर में प्रविष्ट हुआ।

न्यस्त-भार होकर कोटारानी बहुत प्रसन्न थी। उसका बालक चुपचाप पड़ा सो रहा था। दासी ने उसका मुख खोलकर रिंचन को दिखाया, "यही है कश्मीर के भावी सम्राट् !"

कोटारानी ने कोई दूसरी बात नहीं पूछी, "क्या किसी समझौते पर आये ?"

"उसीके शुभ परिणामस्वरूप तुमने यह पुत्ररत्न प्राप्त किया।"

"फिर भी ! मैं पूछती हूं, क्या हमारा यह कश्मीर फिर अपने पूर्व गौरव में लौट भी सकेगा ?"

"हां-हां, क्यों नहीं !"

"कैसे ?"

"जब तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगी, तब बताऊंगा।"

"मैं क्या बीमार हूं ? लेने-देने की क्या शर्त रही ?"

"कुछ दिया तो कुछ मिला भी अवश्य। और यह अपनी ही समझ का विस्तार है कि जो कुछ मिला, उसे दी वस्तु से श्रेष्ठ समझ लू।"

"तुमने उसे मंत्रीपद दिया और वह तुम्हारे महाराज के सिंहासन पर ही सुशोभित रहने पर सहमत हो गया। फिर यह उसकी देन कैसी ?"

"नही, सिंहासन से बड़ी और एक चीज दे दी।"

"ऐसा क्या ? क्या कोई स्पर्श-मणि ? कि तुम राज्य के सभी निर्धनों की झोपड़ियों में सुवर्ण बिछा दो।"

"क्या सुवर्ण की तृष्णा मृग-मरीचिका ही नही है, जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है ? पर उसने मुझे वह वस्तु दे दी, जो मुझे कोई हिंदू नही दे सका था।"

"तुम्हारे इस प्रकार चक्र में बात छिपा देने का अर्थ क्या है ?"

"हिंदू मुझे अपना धर्म नही दे सके, उन्होंने दे दिया! इसे मैं क्यों नही उनकी उदारता कहूं ?"

"मैं तो न समझूंगी इसे ऐसा !"

"तब तुम्हें काश्मीर की भलाई दृष्ट नही है। उसके लिए मुझे मुसलमान होना ही चाहिए।"

"तुम हिंदुओं को पूर्व की, मुसलमानों को पश्चिम की दिशा का बंदी समझते थे। पर तुम्हारा ऐसा कोई बंधन न था। इसलिए तुम अपनेको उन दोनों के संयोग की शृंखला मानते थे। फिर यह क्या हो गया ?"

"मेरे बौद्ध साथी यहां थोड़े-से है। ये हिंदू अपने पाखंड के अभिमानी, बुद्ध को अवतार मानकर भी बौद्ध नही हो सकते।"

"तो तुम क्यों अपना धर्म बदलते हो ?"

"हां रानी, मैं ही नही, तुम्हे भी उसी मार्ग पर चलना होगा! और यह हमारा नवजात शिशु, हम इसे लेकर भी उनकी संख्या बढ़ा देंगे।"

"राम-राम ! यह क्या निकल गया तुम्हारे मुख से ?"

"तुम्हें भी करना यही है !"

"कदापि नही !"

"देश का हित, जनता की भलाई, यही हमारे जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। धर्म को मनुष्यों ने पाखंड बना रखा है। भीतर कुछ, बाहर कुछ। भीतर-बाहर की समानता ही है आत्मा की सच्चाई। सच्चाई का प्रकाश यही है कि सभी धर्म समान है!"

"तुम हिंदू ही क्यो नही बने रहते? उनकी संख्या सबसे बड़ी है।"

"जिनको मैंने नौकरिया दी है, केवल वे ही मेरे सामने मुझे हिंदू मानते है। मेरी पीठ पीछे मेरे संसर्ग के प्रायश्चित्त के लिए वे स्नान करते है। शेष हिंदू प्रजा तो मुझे म्लेच्छ-नास्तिक ही कहती है।"

"उनके कर्म उनके साथ हैं, तो क्या तुम राजदंड से उन्हें विवश नही कर सकते?"

"नही, यह उचित नही है। इससे सारी हिंदू प्रजा विद्रोही हो जायेगी।"

"तो फिर तुम अपने ही मन से क्यो नही हिंदू बने रह गये? तुम्हे रोकने वाला कौन है?"

"नही, मैं ऐसे अनुदार धर्म मे नही रहना चाहता, जो दूसरे धर्म को हीनता देकर अपने ही मत को सर्वश्रेष्ठ समझता है।"

उदयनदेव सहदेव का सगा भाई था। जब जुलचू ने भारी सेना लेकर कश्मीर को लूटा, तब वह भागकर गाधार चला गया। वहा उसे गाधार के शासक का आश्रय मिल गया। अपनी शक्ति बढाने के लिए वहा वह सैन्य-सग्रह के उपाय ढूढने लगा।

भाई की मृत्यु का समाचार मिलने पर उसकी आकाक्षा कश्मीर के राजसिंहासन पर लग गयी। उसे यह निश्चय हो गया कि रिंचन के लोगों ने उसके भाई को धोखा देकर मार डाला। वह दिन-रात रिंचन से इसका बदला लेने की सोचने लगा। जब उसने सुना कि उसने कोटारानी को

अपनी अर्द्धांगिनी बना लिया है, तो उसकी यह प्रतिहिंसा और भी प्रबल हो उठी।

उधर लावण्यकों का नेता राष्ट्रभानु तो इस चेष्टा में था ही कि किसी तरह उस म्लेच्छ की सत्ता इस देश से मिटा दी जाये। कोटारानी पर किसकी दृष्टि न थी? और जब उसका विवाह उस विधर्मी से हो गया तो राष्ट्रभानु की प्रतिहिंसा में भी घी की आहुति पड़ गयी।

कोटारानी के साथ उस विदेशी का विवाह करा देने में मुख्य सहायक वह रावणचंद्र को ही समझता रहा, पर तुक्का ने इसे उसकी कूट चाल बताया कि रिंचन के शासन में उच्चपद प्राप्त कर वह किसी दिन अवसर पाकर उसके पतन का कारण हो जायेगा।

इसपर राष्ट्रभानु ने कहा, "यह सरासर झूठ है। उसे शूली दी जाने वाली थी, पर उस रावण ने उस हिंदू कन्या की बलि देकर अपने प्राण ही नहीं बचा लिए प्रधान सेनापति भी बन गया।"

"यदि यह झूठ है तो इसकी पोल खुल जाने का समय आ पहुंचा है। विशप्रस्थ में उसके विरुद्ध विद्रोह जाग उठा है। रिंचन सेनापति रावणचंद्र के साथ उसे दबाने के लिए स्वयं जाने वाला है।"

"तुम क्या करोगे?"

"मैं कुछ सिपाहियों को व्यापारियों के वेश में ले जाऊंगा। यदि रावणचंद्र की सच्चाई के बीच से मार्ग मिल गया, तो मैं उस म्लेच्छ को समाप्त कर लौट आऊंगा।"

राष्ट्रभानु ने बड़ी प्रसन्नता से इसके लिए सहमति दे दी। गुप्तचरों द्वारा रिंचन और उसकी सेना के प्रस्थान का समय जान लिया गया। उसीके अनुसार तुक्का उनकी सेना के पीछे अपने सौदागरों का कारवां लेकर चला।

संध्या समीप थी। तुक्का अपने साथियों को एक पड़ाव में छोड़कर, अपने सहकारी के साथ निकट के टीले पर चढ़ गया। वहां से उसका लक्ष्य नहीं मिला तो वह दूसरे टीले पर जा चढ़ा। अब रात हो गयी थी। एक नदी के किनारे चूल्हों की आग और मशालों की रोशनी से उसे रिंचन की छावनी का पता चल गया।

रात घनी होती गयी। उसके परदे मे वह काले कपड़े पहन धीरे-धीरे रिंचन के तंबू का पता लगाकर उधर बढ़ गया। उसके बाहर द्वार से हटकर एक प्रहरी खड़ा था। भीतर रिंचन पूजा करता हुआ दिखाई दे रहा था।

तुक्का ने अपने साथी को, पीछे वह भाग न सकेगा, यह समझकर पहले ही भगा दिया। उसे शर-संधान का सुनहरा अवसर मिल गया। उसने धनुष में बाण चढा भी दिया। सहसा उसे यह स्मरण हुआ कि देवता की पूजा करते हुए किसीके प्राण हर लेना महापाप है।

तभी रिंचन दीप जलाकर जिसकी आरती उतारने लगा, तुक्का ने उसे पहचान लिया, वह कोटारानी का बहुत बडा चित्र था। अब तो उसकी सारी झिझक जाती रही। उसने तीर छोड़ दिया। रिंचन की छाती पर था लक्ष्य, पर वह जाकर लगा उसकी दाहिनी बांह मे। आरती नीचे गिर पडी। सारी छावनी मे हाहाकार मच गया। अगरक्षक चारो ओर घातक को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े।

केवल रावणचद्र ही तुक्का के मार्ग का सूत्र पा सका। वह खड्ग लेकर उसके पीछे दौड़ गया। रिंचन के और सेवक भी दौड़े, पर कोई कही बहक गया, कोई कही।

तुक्का परिश्रम से थक गया था। एक काटे मे उलझकर वह गिर पडा और रावणचद्र ने उसको पकड लिया, "चांडाल, चोर की तरह पूजा मे बैठे पर तूने तीर चलाया, तुझे धिक्कार है।"

"हाड़-चाम की नारी की आरती ही क्या पूजा है? और तू उसका स्वामिभक्त सेवक, तूने हिंदुओ की नाक काटकर पूजा करने को उसे वह देवी दी।"

"कौन तुक्का? मैंने पहचान लिया तुम्हें।"

"तो क्या मैं तुझसे डरता हू? चल द्वद्वयुद्ध के लिए तैयार हो जा। अपने भाई के हत्यारे! हां, तूने ही उसकी हत्या कराई है।"

"मैं क्या आपसे युद्ध करने आया हू?"

"तो पकड़कर ले जा मुझे अपने स्वामी के पास।"

"नही, इसलिए नही आया हू।"

"फिर किसलिए आया है?"

"आपको यह बताने कि मैं लावण्यकों का गुप्तचर होकर उसकी सेवा मे नियुक्त हू। आप वेशटके चले जाइये। शीघ्रता करें कि कोई दूसरा आकर आपको पहचान न ले।"

वे दोनो तुरंत ही एक-दूसरे से विदा हो गये। सभी घातक की शोध से निराश होकर लौट आये। रिंचन की परिचर्या में लगे हुए एक सैनिक ने रावणचद्र को वापस देखकर पूछा, "सेनापति जी, आप भी वैसे ही लौट आये ?"

रिंचन कराहते हुए बोला, "कसूर मेरा ही है। मेरा धर्म, संस्कृति, खान-पान, पहनावा, शक्ल-सूरत, रुचि सब कुछ अलग-अलग। फिर मेरी हिम्मत क्यों हुई इनका सम्राट् बन जाने की ?"

रिंचन को तुरंत ही श्रीनगर में उसके महल में पहुंचा दिया गया। तीर की परीक्षा कर वैद्य जी ने कहा, "यह तीर प्राणघातक विप मे बुझा है। यह सत्य महाराज के कान में देने का नही है।"

कोटारानी को किसी दासी ने यह सूचना दे दी थी कि महाराज पालकी में लौट आये हैं। तभी उसकी शंका बढ़ गयी थी। और जब उसने रावणचंद्र को उदास मुद्रा में देखा तो पूछा, "क्या बात है चाचा जी ? कहते क्यों नहीं, कब तक सच्चाई छिपायी जा सकती है ?"

"महाराज को युद्ध मे चोट लगी है। तुम्हें वही उन्होंने याद किया है।"

कोटारानी भागती हुई रिंचन के पास गयी। उसकी दयनीय दशा देख वह रोने लगी। रिंचन ने सभी सेवको को वहां से जाने को कह दिया। वैद्य जी के इलाज से भी बीमारी बढती ही गयी। वे भी असतुष्ट होकर चले गये।

रिंचन ने रावणचद्र से भी कह दिया, "सेनापति, तुम्हारी भी कोई आवश्यकता नही। मैं कोटारानी से कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूं।"

रावणचंद्र समझ गया, कदाचित् विष का प्रभाव रिंचन के मस्तिष्क तक पहुंच गया। उसके जाने पर कोटारानी ने द्वार ढक दिया।

"मेरे कुछ निकट आ जाओ रानी।" उसने धीरे-धीरे कहा।

"वैद्य जी क्यों चले गये ?"

"मेरा इलाज उनकी शक्ति से बाहर है, इसीलिए।"

"हां, वे कहते थे कि तीर का डंक प्राणांतक विष में बुझा हुआ है। पर मैं करूंगी उसका परिहार।" कोटारानी रिंचन की पकड़ छुड़ाकर जाने लगी।

रिंचन उसे रोककर बोला, "ठहरो तो सही। सुनो तो सही।"

"नहीं, पहले तुम्हारी औषधि, फिर बात।" कोटारानी बड़ी तेजी से चली गयी।

रिंचन की पीड़ा बढ़ने लगी और उसका मन कोटारानी और उसकी बांह की पीड़ा दोनों में ही अटका रह गया। उसकी पीड़ा को वह बढ़ा भी गयी और उसके शमन का आश्वासन भी दे गयी।

कोटारानी को जाती हुई देख रावणचंद्र फिर रिंचन के सामने होकर बोला, "क्यों महाराज, कैसी है पीड़ा ?"

"तुम घातक को पकड़कर नहीं ला सके ?"

"नहीं महाराज !"

"मेरे घातक को नहीं, अपने भाई के घातक को।"

रावणचंद्र की समझ में अब आ गया, कदाचित् विष की कोई लहर रिंचन के मस्तिष्क तक फैल गयी है।

वह फिर संयत होकर कहने लगा, "कोटारनी नहीं आयी, बड़ी देर लगा दी।"

कुछ प्रतीक्षा के पश्चात् वह एक डिबिया लेकर आ पहुंची। रावणचंद्र को बाहर कर उसने द्वार बंद कर दिया और डिबिया खोलकर उसमें से एक चुटकी ली।

"क्या है यह ?"

"मेरे सौभाग्य की प्रतीक और तुम हो कश्मीर के प्रत्यक्ष सौभाग्य! मैं प्रतीक की उपेक्षा कर भी सौभाग्य की रक्षा करूंगी।" वह रिंचन का घाव खोलकर उसमें वह चुटकी भरने लगी।

रिंचन ने कोई विरोध नहीं किया, "अच्छा, तुम अपना इलाज कर लो। फिर इसके बाद मेरे अनुसार भी करना पड़ेगा।"

"करूंगी।"

"वचन दो !"

"दिया।"

रिंचन के घाव में अब कोटारानी ने खूब सिंदूर भर दिया। फिर उस-पर पट्टी बांधकर बोली, "अब कहो, तुम्हारे अनुसार क्या करना है ?"

रिंचन के मुख से पीड़ा में भीगकर शब्द निकला, "शाहमीर !"

कोटारानी चौंक पड़ी। उसके मुख से प्रतिध्वनि दी, "शाहमीर ?" समझ गयी वह, रिंचन फिर अपने उसी दुराग्रह को दुहराना चाहता है।

रिंचन ने उसका मत लेने के लिए कहा, "कोटा, सचमुच में तुम्हारी यह औषधि बहुत सफल हो गयी। मैं समझता हू, आधी पीड़ा तुमने दूर कर दी मेरे हाथ की, आधी अब रह गयी शाहमीर के हाथ में।"

कोटारानी ने दूसरी तरफ मुंह कर कहा, 'क्या वह हकीमी भी जानता है ?"

"हां, जानता है। उसके पास एक ही मत्र है। उससे हम तीनों उसके धर्म में दीक्षित हो जावेंगे।"

रानी चिल्ला उठी, "तीसरा कौन ?"

"हमारा यही शिशु।"

"नही महाराज, यही नही हो सकता।"

"अगर तुम मुझे कश्मीर के महाराज और अपनेको महारानी के पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहती हो तो इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। ये हिंदू सब मुझे विधर्मी समझते हैं। क्या मैं इनके धर्म में शामिल होने को तैयार नही हो गया था ? पर इन्होंने अब तक मुझे शरण नही दी। इनके धर्म का यह घमड, क्या ये इसीमें डूबकर नही रह जावेंगे ? और वे लोग कितने उदार हैं कि जो भी इनके निकट जाता है, उसे हर समय अपनेमें मिला लेने को तैयार रहते हैं। क्यो ?"

कोटारानी ने इसका कोई उत्तर देने के बदले पूछा, "अब पीड़ा कैसी है ?"

"हां, तुमने मेरा आधा इलाज तो कर ही दिया है। आधे के लिए शाहमीर। क्या तुम मुझे जीवित रखने को तैयार नही हो ?"

कोटारानी चौककर बोली, "मेरा बालक रो रहा है।"

"ठहरो, कहां जाती हो ? उसकी सेवा के लिए और भी कई दासियां हैं।" रिंचन ने उसका हाथ पकड़ लिया, "एक बार तुम देश के लिए अपना धर्म छोड मेरी हो गयी थी। आज हम उसी देश के लिए क्यों न अपना हठ छोड़ दें ?"

कोटारानी बिना अधर खोले, मूर्त्ति में गढी-सी अचल होकर खड़ी रह गयी।

"हमे इसके लिए कोई भी वेश नही रखना है। उन्हें केवल अपना अभिमत सौंप देना है। क्यो सोच रही हो अब ? क्या तुम कश्मीर की महारानी बनने के लिए उत्पन्न नही हुई हो ?"

"हू तो सही।"

"फिर युद्ध के मार्ग मे बडी विभीषिकाए है। शाति का मार्ग केवल यही एक है।" वह बड़े उत्साह से उठ बैठा। उसने कोटारानी के वक्ष पर आया हुई एक लट उसकी पीठ पर डाल दी।

"नही, उठो नही। क्षत के पूरने तक तुम्हें पूरे विश्राम की आवश्यकता है।"

उसने रिंचन को फिर शय्या पर सुला दिया।

देश के सौभाग्य के लिए अत मे कोटारानी रिंचन की विचारधारा से सहमत हो गयी। उसने शुद्ध सत्य को धर्म की आत्मा मान लिया। उसके लिए जो आचरण किया जाता है, उसे धर्म का शरीर और उस आचरण के लिए जो पाखड दिखाया जाता है, उसे धर्म के कपड़े मान लिया उसने। वह उस कपडे को बदल देने के लिए तैयार हो गयी।

शाहमीर के पास जिस दिन यह सदेश भेजा गया, उसी दिन वह चला आया। वह राजनीति का विश्वासी नही था, इसलिए अंगरक्षकों की पूरी सेना ही लेकर आया।

एक दरबार किया गया। उसमे सबसे पहले एक खिलअत के साथ शाहमीर को प्रधानमत्री के आसन पर बैठाया गया। अपने शिशु पुत्र और अनेक दासियो के साथ कोटारानी भी उस उत्सव में उपस्थित थी। प्रधानमत्री के निकट ही कश्मीर के महाराज रिंचन का सिंहासन भी सुशोभित

था। अभी वे भूमि पर ही खड़े थे।

उस प्रसन्नता में रिंचन अपने हाथ की पीडा को विलकुल ही विसर्जित कर चुका था। पट्टी में बंधा वह हाथ, सोने-चादी का काम किये हुए बहु-मूल्य राजसी वस्त्र से ढका हुआ था। दरवार का तोरण-वदनवारों और फूल-मालाओं से सजा हुआ सुवासित वातावरण वाहर बजते हुए वाजों से मुखरित हो उठा था।

शाहमीर की योजना के अनुसार मौलवियों ने कलमा पढ़ाकर उन तीनों को इस्लाम मजहव में दीक्षित कर दिया। रिंचन का नाम रखा गया 'शम्सउद्दीन', कोटारानी का 'कुलसूम' और उस शिशु को नाम दिया गया 'हैदर'।

उस राजदरवार का सचालक शाहमीर ही था अव तक। दीक्षा की सभी औपचारिकताओं की सपन्नता पर शाहमीर ने राजसिंहासन की ओर सकेत किया। तव कोटारानी का हाथ पकड़ रिंचन और युवराज मच पर अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। हैदर कोटारानी की गोद में था।

सारी राजसभा ने उठकर जयघोष किया, "भारत के मुकुट काश्मीर की जय !"

फिर रिंचन ने उस शिशु को पत्नी की गोद से लेकर शाहमीर की ओर बढाकर कहा, "मैं इस वच्चे को आपकी सरपरस्ती में सौंपता हू। इसकी उन्नति-विकास, पढ़ाई-लिखाई सब आपकी ही देख-रेख में होगी।"

शाहमीर ने उस वच्चे को गोद मे ले लिया। उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "खुदा हाफिज !" फिर उस वच्चे को उसकी मां को ही सौंपकर वोला, "अभी इन्हें चार साल तक मा की ही सरपरस्ती की जरूरत है।"

वाजे-गाजे के साथ सभा विसर्जित होने लगी। अव रिंचन कुछ पीड़ा के साथ सिंहासन से उतरा तो सभी लोगों ने उसकी पीड़ा के वारे मे पूछा, उसने सभीको उत्तर दिया, "इतनी दृढता के साथ मैंने सभा में भाग लिया, क्या वह मेरे ठीक हो जाने की साक्षी नही ?"

रिंचन के धर्म-परिवर्तन का यह समाचार रात होते न होते हिंदुओं के घर-घर फैल गया। इसकी प्रतिक्रिया में सव हिंदुओं ने अपने-अपने विरोध

भूलकर एक हो जाने की ठान ली। उन्होंने इधर-उधर पत्र-व्यवहार किया, दूतो ने दौड-भाग की, लोगों ने सभा-सम्मेलन किये।

सहदेव के भाई उदयनदेव की चेष्टाए सबसे अधिक सक्रिय हो उठी। उसने लावण्यको के साथ और भी अनेक हिंदू सरदारो को संगठित किया। रिंचन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री तुक्का को अपने निकटतम संपर्क में लिया। इस प्रकार पूरी तैयारी के साथ रिंचन की राजधानी में छापा मारने का सुयोग ढूढ़ा जाने लगा।

गुप्तचरों द्वारा रिंचन के पास इस समाचार के जाने मे कोई देर नही लगी। तभी से उसके हाथ की पीडा, जो अभी तक शात थी, फिर उभर आयी। अब क्या हो।

बहुत दिनो तक रिंचन उस पीड़ा को दबाता रहा, मगर अत मे वह असह्य हो उठी। कोटारानी का उपचार भी किसी काम का न हुआ। रिंचन की छटपटाहट देखकर अब तो कोटारानी घबरा उठी। कई प्रकार के इलाज किये गये, किसीसे कोई सुफल नही मिला। रावणचंद्र ने ब्राह्मणों को नियुक्त कर कई प्रकार के याग-यज्ञ, पूजा-पाठ, दान-धर्म भी कराये, पर दिन-दिन बीमारी बढती ही गयी। अत मे रिंचन शय्या पर पड गया और उठ ही नही सका।

अपनी ओर से शाहमीर ने भी भाति-भाति के प्रयत्न करवाये। जब वे भी कारगर न हुए तो उसने दिल्ली को एक विशेष प्रतिनिधि भेजकर मुगल सम्राटो के एक प्रसिद्ध जर्राह को श्रीनगर से बुला लिया।

शाहमीर जर्राह को लेकर रिंचन के पास पहुचा। पहले शाहमीर ने उस जर्राह के बड़े-बड़े करतबो की गुण-गाथा सुनाई। फिर उस उपचारक ने स्वयं अपना सुयश गाया। फिर भी रिंचन का उस जर्राह के ऊपर कोई विश्वास नही जमा और वह बोला, "नही, मुझे आपके छुरों के बक्स को देखकर बड़ा डर लगता है।"

जर्राह बोला, "जहांपनाह, आप मेरा इलाज न कराइये—मुझे कोई शिकायत नहीं, मगर एक बार मुझे घाव को देख तो लेने दीजिये।"

"यह पट्टी सिर्फ उनके ही हाथों से खुल सकती है। दूसरों के हाथ मुझे कांटों की तरह चुभते हैं।"

जर्राह ने मन ही मन उन हाथों को समझ लिया और विनम्र होकर बोला, "तो उन्हींको बुला दीजिये।"

शाहमीर ने पास खड़े रावणचंद्र को संकेत दिया। कोटारानी जर्राह के प्रवेश पर भीतर चली गयी थी। और पार्श्ववर्ती कमरे से चिक की ओट से सब कुछ देख और सुन रही थी।

वह किसीसे परदा तो करती थी नहीं, पर जब से मुसलमान संप्रदाय में दीक्षित हो चुकी है, तब से उसको परंपराएं उसे माननी पड़ी हैं। प्रथा के अनुसार उसके लिए बुरके भी बनवा दिये गये थे। बाहर जाने के लिए वह कभी-कभी उन्हें पहनने लगी थी।

पहले वह उस अधेड़ उम्र के शाहमीर की तीखी नजरों से बचने के लिए कतराती, पर जब से वह उसके पुत्र का शिक्षक और संरक्षक बन गया, वह उसके सामने खुल गयी। लेकिन उस जर्राह की लंबी दाढ़ी से वह घबरायी।

रावणचंद्र भीतर आकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसने कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि वह उस समय बुरका उठाकर अपने ऊपर डाल रही थी। महल के भीतर आज पहली बार उसे बुरके का उपभोग करना पड़ा। रावणचंद्र बोला, "बुरके की क्या आवश्यकता है?"

कोटारानी ने धीरे-धीरे कहा, "वह दाढ़ीवाला जो दिल्ली से आया है।"

कोटारानी धीर-मंद्र गति से रिंचन के स्वप्नागार में जाकर खड़ी हो गयी। उसके शिशु का संरक्षक बोला, "बुरका रहने देती। ये जर्राह बिलकुल अपने ही आदमी हैं।"

कोटारानी ने बुरके के भीतर से अपने दोनों हाथ निकाले। शाहमीर का हाथ उसके बुरके पर खिंच गया। उसने उसे ऊपर उलटते हुए कहा, "बुरका भी तो खोलो!"

रिंचन को शाहमीर की यह हरकत अच्छी नहीं लगी। कोटारानी ने

कुंठित होकर उसकी पट्टी खोलना शुरु किया। जर्राह घाव देखने के बदले कोटारानी के मुख पर ही अटक गया। और उसे इस बात की पूरी साक्षी मिल गयी कि शाहमीर ने कोटारानी के रूप की जो महिमा गायी थी, उसका एक भी अक्षर झूठ नही था।

कोटरानी ने बड़े हलके हाथों मे पट्टी खोल दी। जर्राह ने पूछा, "क्या इस सिंदूर से कुछ फायदा हो रहा है?"

कोटारानी ने कोई उत्तर नही दिया। रिंचन ने एक ठंडी सांस ली।

जर्राह ने अपना इलाज चलाया। रिंचन ने सबसे पहले उससे यह शर्त कराना चाहा कि उसके घाव मे लोहे का स्पर्श बिलकुल नही किया जायेगा।

जर्राह बोला, "फिर मैं क्या इलाज करूं? घाव मे जो पुरानी दवाओ का ससर्ग है, उसे तो हटाना पड़ेगा।"

अत मे रुई की मदद से धोने पर वह राजी हो गया। पर उसका जो दूसरा खाने-पीने का प्रतिबंध था, वह रिंचन को मान्य नही हुआ। वह प्रतिबंध था किसी भी मादक वस्तु का स्पर्श न करने का। रिंचन शराब भी पीता था और अफीम भी खाता था।

जर्राह ने रिंचन का घाव धोकर पहले दिन अपना लाल मरहम लगाकर उसमें पट्टी बाध दी। वह डेरे को जाते समय फिर कोटारानी से कह गया कि कोई नशीली चीज इन्हें दी गयी तो दवा का उलटा असर हो जायेगा।

शाम को रिंचन नही रह सका। उसने कोटारानी से छिपाकर अफीम काफी मात्रा मे रख ली थी। अवसर पाकर उसने एक गोली खा ली और गोल हो गया।

दूसरे दिन जब जर्राह ने पट्टी खोली तो उस लाल मरहम का रंग बदलकर नीला हो गया था। वह सिर पटककर बोला, "धोखा! धोखा! नशा किया गया! किया गया!"

कोटारानी अब जर्राह के सामने खुल गयी थी। बोली, "नही, हकीम साहब, बिलकुल नही।"

"मरहम का रंग फिर कैसे नीला पड़ गया? अब कुछ नही हो सकता।

मैं बदनामी लेने के लिए यहां नही ठहर सकता।"

वह फिर नहीं रुका, सीधा शाहमीर के पास चला गया। उसी दिन उसने अपने सेवकों को साथ लेकर दिल्ली लौटने की सवारी का प्रबंध करा लिया और चला गया।

जर्राह रुष्ट होकर कह गया कि विष सारे अगों में फैल गया—अब बीमार का ठीक होना असभव है। रिंचन की दशा दिनोदिन खराब होती गयी। अब उसे चारों ओर अंधकार ही अधकार दिखाई देने लगा।

हिंदू उसके शत्रु थे ही, मुसलमान भी उसे आधा काफिर ही समझते। कोटारानी उसके दुर्गंधपूर्ण घाव से दूर ही दूर रहने लगी। रावणचद्र भीतर ही भीतर तुक्का से मेलजोल बढ़ाने लगा और शाहमीर भी प्रधान-मत्री की जगह कश्मीर का पूरा शासक ही बन जाने की रूपरेखा बनाने लगा।

रिंचन का अतिम समय आ पहुंचा। उसने रावणचद्र, कोटारानी और शाहमीर को बुला भेजा। शाहमीर आया ही नही, कोटारानी कक्ष के बाहर और रावणचद्र द्वार पर खड़ा हो गया।

जो उसके सामने आकर खड़ा था, उससे रिंचन ने कहा, "वह विष-बुझा तीर तेरे ही षड्यत्र से मुझपर छोड़ा गया। रावणचद्र, यह मत समझना कि यह भेद मुझपर न खुला।"

"मालिक, मैं जोखू हूं। मैंने आपको कश्मीर का राजमुकुट सौंपा था।"

"जोखू, तेरे उस पाप का ही मै शिकार हो गया। रावणचद्र तक मेरे आखिरी शब्द पहुंचा देना। और उस घाव पर जहर छोड़ने वाली थी यही कोटारानी, नही आयी?"

कोटारानी सामने आकर बोली, "मैंने दो बार तुम्हारे लिए अपने धर्म की बलि दी और तुम आज ऐसा कहते हो?"

"तो सुन ले, इस राजमुकुट का गवाह यह जोखू है। तुझे सदेह था कि मैंने तेरे चाचा को मरवाया।"

वह राजमुकुट वही पर रखा था। उसने उधर इशारा कर कहा, "तूने इसीके लिए धर्म बदले और फिर बदलेगी। पर यह किसीका न

हुआ।" कहते हुए उसने प्राण छोड़ दिये।

रिंचन के स्वर्गवास से सभी हिंदुओं के दलों में उत्साह फैल गया। पर शक्ति के लिए उनकी व्यक्तिगत दौड़ ने एक-दूसरे के साथ समझौता नहीं होने दिया। वे टूटे और बिखरे ही रह गये। एकता उन्हें संबद्ध कर शक्तिशाली नहीं बना सकी।

कोटारानी ने फिर अपने पुत्र हैदर का मुख देखकर कश्मीर की महारानी बन जाने का उत्साह जगा लिया। हैदर अब उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ चलने-फिरने और बोलने लगा था।

उसने शाहमीर को बदस्तूर अपना प्रधानमंत्री कायम रखा। हैदर को उसीके संरक्षण में सौंपकर उसका विश्वास प्राप्त किया। हैदर राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया और वह स्वयं सहदेव का राजमुकुट धारण कर महारानी बन गयी।

उदयनदेव ने सेना का संगठन कर सुआत में अपनी शक्ति बढ़ा ली। वह अक्सर कोटारानी के राज्य की सीमाओं पर छोटे-मोटे हमले कर उसे त्रास पहुंचाता रहता। कभी उसके अनाज के भंडार को लूट लेता, कभी उसके पशुओं के घास के ढेरों में आग लगा देता। अवसर पाकर उसका खजाना और अन्न-भंडार भी छीन ले जाता। एक बार उसने हैदर को उड़ा ले जाने का भी प्रयत्न किया, पर असफल रहा।

उसके नित्य के आक्रमणों से तंग आकर अंत में कोटारानी को उससे समझौता कर लेने की सूझी। उसने उसके पास यह संदेश भेजा कि यदि वह राज-काज में कोई हाथ न रखने की शर्त माने, तो उसके साथ विवाह करने को तैयार है।

उदयनदेव की तारिका चमक उठी। उसने सहर्ष इस प्रस्ताव का स्वागत किया। जिस विवाह के लिए उसका भाई सहदेव जीवनपर्यंत लालायित रहा, पर वह उसे प्राप्त न हो सकी आज इतनी सरलता से वह उसकी अर्द्धांगिनी बन जायेगी क्या?

उसने तुरत ही उत्तर भेजा, "राज-काज में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करूंगा। भाई के राजमुकुट को सिर पर रखने का लालच भी नहीं। पर दो शर्तें जरूरी हैं। पहली तुम्हें हिंदू होना पड़ेगा। मुसलमान मत के सारे

चिह्न, जो उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान के महल में घर कर गये है, सब झाड़-पोंछकर दूर कर देने होंगे। दूसरी रिंचन के बेटे हैदर को त्याग कर उससे कोई मतलब नहीं रखना होगा।"

पहली शर्त के लिए वह तैयार बैठी ही थी, पर दूसरी शर्त ? हैदर उसके हृदय का भाग, वह उसे काटकर कहां फेंक सकती है ?

अंत मे उसे यह भी करना पड़ा। क्या प्रजा के कल्याण के लिए या अपने मन मे बसे उस राज के लिए या हृदय में बसी शासन की वासना के लिए ?

उसने अपने प्रधानमंत्री शाहमीर को बुलाकर कहा, "शाह साहब, होनी को कोई नही जानता, उसके आगे सिर झुकाना ही पड़ता है। उदयनदेव को हम अपनी तलवार से वश मे नही कर सके, अब मैं समझौते के लिए स्वयं को उसपर निछावर करती हूं।"

शाहमीर इस स्थिति मे कुछ और सपने रंग रहा था, चौंककर बोला, "यह क्या ?"

"लेकिन आपके लिए कोई चिंता की बात नहीं। मैंने उससे प्रतिज्ञा कर ली है, राज-काज मे उसकी कोई बात शामिल नहीं की जायेगी। आप पूर्ववत् हमारे प्रधानमंत्री बने रहेंगे। सिंहासन पर उसकी कोई जगह न होगी। राजमुकुट मैं ही धारण करूंगी। उसे मैंने राज-वैराग्य लेकर गीता पर कोई टीका लिखने के लिए राजी कर लिया है।"

कुछ आश्वस्त होकर शाहमीर बोला, "हैदर का क्या होगा ?"

"वह तो आपके ही संरक्षण मे रहेगा। मुझे विवश होकर हिंदू बनना पड रहा है तो मैं क्यों उसका नाम बदलूं ?"

शाहमीर के लिए यह और भी प्रसन्नता की बात थी, क्योंकि इससे कोटारानी पर उसके प्रभुत्व की दृढ़ता बनी रहेगी। वह प्रसन्न होकर चला गया।

वेदमंत्रों द्वारा कुलसूम की शुद्धि की गयी। पंचगव्य से उसे स्नान कराया गया। व्रत-उपवास, जप-पाठ, और यज्ञ-होम द्वारा उसके पाप दूर किये गये। वह फिर कोटारानी बन गयी। उसने माथे पर तिलक धारण किया। जो सिंदूर रिंचन को नही बचा सका था, उसे फिर अपनी मांग में

भरकर उसने अपने सौभाग्य को सजीवित कर लिया।

अग्निवेदी के चारों ओर उदयनदेव के साथ सात परिक्रमा कर उसने फिर विवाह की प्रतिज्ञाएं भरी।

हैदरशाह शाहमीर के ही संरक्षण में मुसलिम संस्कृति में बढ़ता-पलता रहा। कोटारानी को भूलकर भी उसके पास जाने की अनुमति नहीं थी, पर कभी-कभी वह चोरी-छिपे उसे देख ही आती थी।

साल-भर बाद कोटारानी और उदयनदेव के एक पुत्र हुआ। उसने उसका नाम शंकर रखना चाहा था, पर महारानी ने एक पूर्वस्मृति को जागरित रखने के लिए उसका नाम मार्त्तंड रख दिया।

समय का चक्र बड़ी तीव्र गति से परिवर्तित जान पड़ा। चार साल बीतते कोई देर नहीं लगी। उदयनदेव अपने अंत:पुर में ही बंदी होकर रह गया। धार्मिक पुस्तकों के अनुशीलन के अतिरिक्त अब उसका मन बटाने के लिए एक और सहारा मिल गया। वह था मार्त्तंड। कभी पिता की गरदन पर चढ़ जाता, कभी पीठ पर सवार हो उसके जनेऊ की लगाम बना, उसे टिकटिकाकर घोड़ा बनाता। कभी उसकी टोपी बाहर उछाल, जूता छिपा देता। कभी हाथ पकड़ उसे उपवन में खींच ले जाता, कभी सरोवर के किनारे पानी उछाल उसे भिगो देता।

कश्मीर में इस हिंदूराज्य की स्थापना, उसके समर्थकों को अब भी मान्य नहीं हुई क्योंकि कोटारानी का प्रधानमंत्री शाहमीर था। उसीके हाथों में शासन के मुख्य सूत्र थे। वह अपनी उदार नीति से हिंदुओं पर छा गया था। कोटारानी उसे निकालने में असमर्थ थी।

और कोटारानी का मातृहृदय हैदर के लिए कब तक पीठ किये रहता। अंत में उदयनदेव को रानी की वत्सलता के आग्रह पर विनीत होना ही पड़ा। उसको वर्ष-भर में एक दिन हैदर से मिलने की छूट दे दी गयी। वह दिन उसकी वर्षगांठ का दिन था। पर अंत:पुर में नहीं, प्रासाद के एक बाहरी कमरे में।

अब हैदर आयु और समझ में परिपक्व हो गया था। बड़ी उत्सुकता से वह अपनी अगली वर्षगांठ का दिन गिन रहा था। और उतनी ही उत्कंठा से कोटारानी ने अपने पुत्र के लिए बहुत-से कपड़े, खिलौने और

खाने-पीने की चीजें तैयार कर रखी थीं। अंतःपुर से दूर एक कमरे में उसके स्वागत का आयोजन था।

बालक आ पहुंचा। कोटारानी ने उसे ललककर छाती से लगाया। उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखा। उसे नये-नये वस्त्र पहनाने लगी। पर बालक न तो किसी कपड़े पर न ही किसी खिलौने पर आकृष्ट हुआ। खाने-पीने की किसी भी वस्तु पर उसने हाथ नहीं बढ़ाया। रह-रहकर वह यही कहता, "मां, अंदर महल में चलो। महल में चलो।"

पर भीतर महल में तो महाराज उदयनदेव की हिंदूसंस्कृति का आधिपत्य था, और वहां विराजमान था उसका बेटा मार्त्तंड। वहां हैदरशाह की छाया से सब कलुषित हो जायेगा, इस भय से कोटारानी उसे अनेक उपायों से बहलाती रही, पर वह माना ही नहीं। उसके रुदन और विह्वलता से कोटारानी द्रवित हो उठी।

बार-बार वह कहता, "मा, मुझे मेरा कमरा दिखाओ जहां मैं सोता था।"

कोटारानी विवश हो गयी। उसने चुपके से एक दासी भेजकर उदयन को यह कठिनाई बतायी और उसे मार्त्तंड को लेकर किसी दूसरे कक्ष में चले जाने को कहा। यही किया गया।

उस कमरे में जाने पर हैदर बोला, "वह कहा है?"

"कौन?"

"मैंने सुना है यहां एक लड़का मेरी नकल करता है। तुम्हें मां कहता है। तुम उसे अपने साथ सुलाती हो क्या?"

"नहीं, यहां ऐसा कोई नहीं है।"

"मुझे सभी कमरे दिखा दो। उस कमरे में यह कौन बोल रहा है?"

"वहां नहीं जाते। एक पुजारी जी पूजा कर रहे हैं। वे गड़बड़ा जायेंगे।"

"मैं देखूंगा, कैसी पूजा है?" वह बंद द्वार को खटखटाने लगा।

उदयनदेव भीतर से चिल्लाया, "नहीं, यहां कोई नहीं आ सकता।"

कोलाहल सुनकर मार्त्तंड जाग उठा। उदयन ने द्वार खोलकर फिर बंद कर दिया। मार्त्तंड वहीं आ पहुंचा। हैदर रानी का हाथ पकड़ बोला,

"क्या यहीं है वह, तुम्हें मां कहने वाला ?"

मार्त्तंड ने कोटारानी का दूसरा हाथ पकड़कर पूछा, "मां, यह कौन है ?"

कोटारानी ने हैदर को समझाया, "उन्ही पुजारी जी का बेटा है।"

"अब उनकी कोई आवाज नही सुनाई देती। क्या पूजा खत्म हो गयी ? वे अपने बेटे को लेकर चले जायें। मैं आज यही रहूंगा।"

मार्त्तंड चिल्लाया, "तू यहा रहने वाला कौन है ?"

कोटारानी बड़े संकट में पड गयी। इस समस्या को कैसे सुलझावे ? अचानक दासी घबरायी हुई आयी, "प्रधानमंत्री द्वार पर खड़े है। बडा भयानक समाचार है।"

शाहमीर ने फिर दासी के लौटने की भी परवा नही की। उसके साथ ही भीतर घुस आया और कांपती आवाज मे बोला, "हीरापुर के मार्ग से तुर्को ने कश्मीर पर चढाई कर दी। उनका सेनापति खूंखार अचल है। यह चढाई तातरियो से भी अधिक भयानक जान पड़ती है। अब क्या किया जाये ?"

"सेनापतियो से परामर्श कर जो उचित हो कीजिये। हैदर को ले जाइये।"

"हैदर को इस समय कहा ले जाऊं ?"

शाहमीर उल्टे पैरो भागा। उसने दुर्ग के परकोटे पर चढ़कर तीन बार तुरही बजाकर आपातकाल की घोषणा की। सभाभवन मे राज्य के पदाधिकारी और प्रागण मे सेना और उसके नायकों की भीड जमा होने लगी।

उदयनदेव यह सब सुन भागवत बंद कर भागा। सब कुछ वहीं छोड़ दिया। कोटारानी के हाथ से उसने केवल मार्त्तंड का हाथ पकड़ लिया।

हैदर ने पूछा, "पुजारी जी यही है क्या ? पूजा हो गयी ?"

कोटारानी ने पूछा, "क्यों, इस सकट में तुम कहां जा रहे हो ?"

"मेरा जब राज-काज मे कोई हाथ ही नही, तो संकट में कौन-सा हिस्सा ? मेरे हाथो के शस्त्र छीन लिये गये, मैंने उनसे शास्त्रों के पृष्ठ उलटने आरंभ किये। मेरा क्षत्रियत्व विनष्ट हो गया। अब क्या होगा ?"

"तुम भी क्या अपने भाई की तरह कायर निकले ?"

"मार्त्तंड को बचाना है। मैं नहीं जानता, जुलचू के बाद कश्मीर में जो कुछ भी बाकी बचा है, वह भी शेष रहेगा या नहीं। मैं कहता हूं, राज्य का मोह छोड़कर तुम भी चलो।"

"प्रजा की रक्षा मेरा पवित्र कर्त्तव्य है। उसे असहाय छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकती।"

"तुम उस राक्षस से प्रजा की रक्षा नहीं कर सकोगी।" वह जाने लगा।

"मैं तुम्हारी इस कायरता को धिक्कारती हूं।"

"और मैं तुम्हारी इस वीरता को, जिसने अपने रूप को बंधक रखकर देश के बहाने देह की तृष्णा बुझाने को राजमुकुट पहना। चलो मार्त्तंड !" उदयन बेटे का हाथ पकड़कर चला गया।

कोटारानी उसका कोई उत्तर देती इससे पहले ही भोलेपन से हैदर ने पूछा, "मां, क्या ये मेरी सालगिरह के दिन ही पूजा करने आते हैं ?"

कोटारानी ने गवाक्ष खोलकर देखा, उदयन पिछले मार्ग से भागा जा रहा था। उसके कंधे पर एक पोटली थी और गोद में मार्त्तंड। उसका मुंह ढका होने पर भी वह पहचान गयी। उसने दौड़कर अपने आभूषणों की मंजूषा को देखा, वह रिक्त थी। वह जोर से चिल्लाई, "कायर ही नहीं, चोर भी है।"

हैदर ने पूछा, "फिर तुमने क्यों इसे पूजा के लिए बुलाया ?"

तुर्कों के उस रक्तशायी सेनापति का नाम था अचल। उदयनदेव के भाग जाने पर भी कोटारानी ने अपना साहस नहीं छोड़ा और आक्रामक का पूरी शक्ति से सामना करने का प्रबंध किया।

रावणचन्द्र ने कल्पित संबंध को सच्चाई से निभाया। शाहमीर ने

भी उनका विश्वासपात्र बनकर पूरा-पूरा साथ दिया। कोटारानी कवच पहन, कमर बांध, शस्त्र हाथ में ले, घोड़े पर सवार होकर उनके साथ समर में कूद पड़ी।

वे विदेशी आक्रामक थे, उनमें लूट का उत्साह बढ़ा हुआ था। वे कश्मीर वासियों की आपस की फूट का लाभ उठाने लगे। उनकी सफलता से भयभीत हो, कोटारानी को अब एक कूट मार्ग सूझ गया।

तुर्कों के सेनापति के पास जब से यह समाचार पहुंचा कि कश्मीर का राजा राज छोड़कर भाग गया तो वे और भी निर्भय हो नगर में घुसने को बढ़े। अचानक कश्मीरियों का एक राजदूत अचल के पास संदेश लेकर पहुंचा। उसका मर्म इस प्रकार था

> कश्मीर का सम्राट् जान लेकर भाग गया। उसका सिंहासन रिक्त है। वह रानी को भी यहीं छोड़ गया। रानी और उसके मंत्री, कश्मीर का राज्य विजेता को सौंप देने के लिए तैयार हैं, केवल एक ही शर्त पर कि वह तुरंत ही मार-काट और लूट-पाट बंद कर दे। और अपनी सारी सेना वापस भेज दे। क्योंकि सेना के साथ राजधानी में घुसने पर कश्मीरवासी उसपर आक्रमण कर देंगे और व्यर्थ का रक्तपात हो जायेगा।

सेनापति अचल ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराजा द्वारा छोड़ दी गयी कोटारानी के रूप-सौंदर्य की महिमा उसने सुन रखी थी। इसके सिवा उसकी सेना ने काफी धन लूट लिया था और शीतऋतु समीप थी। उन्होंने शीतऋतु में जुलचू की सेना की दुर्गति भी सुन ली थी। वे प्रसन्नतापूर्वक स्वदेश लौट जाने को तैयार हो गये।

अचल को केवल राज्य के लोभ ने ही अंधा नहीं बनाया, उसपर कोटारानी के रूप का जादू भी चल गया था। उसने कुछ थोड़े-से प्रधान सहकारी और अंगरक्षकों को छोड़, सारी सेना स्वदेश को भेज दी।

दुर्ग में बड़े आदरपूर्वक उसका स्वागत किया गया। चारों ओर यह समाचार फैल गया कि संधि के फलस्वरूप आक्रामक अचल को कश्मीर का सिंहासन ही नहीं, कोटारानी का स्वप्नासन भी प्राप्त हो जायेगा।

उदयनदेव अपने पुत्र मार्तंड और रानी के आभूषण लेकर भागा-भागा

चला गया। पुत्र को उसने अपने पूर्व मंत्री भिक्षाणदेव के संरक्षण में सौंप दिया और स्वयं लद्दाख की ओर जाने लगा। तभी उसे कोटारानी द्वारा अचल के हाथों अपना राज्य और रूप दोनों सौंप देने का समाचार मिल गया। तुरंत ही उसने अपनी लद्दाख की यात्रा स्थगित कर दी और उल्टे पैरों श्रीनगर को चल पड़ा।

उसके भयानक रोष की कोई सीमा न रही। ज्वलंत प्रतिहिंसा ने उसकी रगों में विषम साहस भर दिया। शीघ्रातिशीघ्र यात्रा समाप्त कर, वह ठीक समय पर श्रीनगर पहुंच गया।

खड्ग हाथ में लेकर वह दुर्ग में चला गया। वह कश्मीर का राजा था, सो किसी ने उसका मार्ग नहीं रोका। वह सीधा राजप्रसाद के भीतर घुसता चला गया।

आक्रामक अचल के सरदार और अंगरक्षक संधि के उत्सव में सुध-बुध खोकर विलीन थे। उनके लिए मद्य-मांस और मछली का विराट् आयोजन किया गया था। इसके बाद नृत्य-गीत का जलसा, नर्तकियों की छमक-छमक! वे सबके सब अपनी सुध-बुध खोकर उसमें डूबे हुए थे।

दुर्ग के द्वारों पर कोटारानी के दास-दासियों ने उदयनदेव के प्रवेश पर सकौतूहल माथा झुकाया। वह अंतःपुर की ओर दौड़ गया। उसका यही निश्चय था, पहले उस आततायी का मुंडछेदन कर फिर उस व्यभिचारिणी का वध!

कोटारानी के निमंत्रण पर अंत.पुर में कुछ ही समय पहले अचल पहुंच गया था। वह मद से इतना मदहोश नहीं था, जितना उसके ऊपर रानी के सौंदर्य की मोहिनी छा गयी थी। वह उसे अपने आलिंगन में लेने के लिए विकल था; और कोटारानी किस प्रकार अपना लक्ष्य पूरा कर उस खुले द्वार से भाग जाये, इसी विचार में हंसती-हंसती उसे विमोहित करती इधर-उधर दौड़ रही थी।

जिस कक्ष में यह लीला हो रही थी, उदयनदेव उसीके द्वार पर पहुंच गया। द्वार-रक्षिका दासी विनीत हो अलग हट गयी। उदयनदेव ने पूछा, "भीतर कौन है?"

अंत.पुर की तमाम दासियों के मनों में यह उत्सुकता प्रबल

कि अब कोटारानी किसपर समर्पित होगी ? उदयनदेव ने दासी को सिर नीचा किये चिंतित देखा, तो फिर पूछा, "उत्तर क्यों नहीं देती, भीतर कौन है ?"

"महारानी जी।"

"मैं पूछता हूं, दूसरा कौन है ?"

उसके उत्तर देने मे पहले ही कक्ष के भीतर कोई चीज धड़ाम से फर्श पर गिरी। उदयनदेव दौड़कर भीतर गया। उसने देखा, सारे फर्श पर बहती रक्त की धारा में पड़ा वह अचल का मुंड था, वहीं उसका धड़ भी। कोटारानी ने तभी उदयनदेव को अपने सामने खड़ा देखकर वह लहू मे सना खड्ग उसके धड़ के पास फेंक दिया और स्वयं उदयनदेव के चरणों पर गिरकर बोली, "देखी तुमने मेरे तक्षक की शक्ति !"

"तुमने क्या इस नीच से विवाह करने को कहा था ?"

"क्या इसी समाचार ने तुम्हारी प्रतिहिंसा जगाकर तुम्हें लौटाया ?"

उदयनदेव कुछ उत्तर न देकर सोच-विचार में पड़ गया।

"तुम मेरा राजमुकुट चुरा ले गये ?"

"यह सोचकर कि इसके हाथ न पड़ जाये।"

पूर्वनियोजित क्रम के अनुसार अचल के जितने भी साथी शराब में अचेत थे, सभीको रावणचंद्र ने कैद में डाल दिया।

इस प्रकार कुछ वर्ष और बीत गये। इस अवधि में कोई विशेष घटना नहीं घटी। न बाहर का कोई शत्रु कश्मीर पर टूट पड़ा, न ही और कोई विशेष घटना।

धीरे-धीरे शाहमीर और कोटारनी के संबंध टूट चले। एक कारण था भिक्षाणदेव, जिसे बुलाकर रानी ने अपने मन्त्रिमंडल में शामिल कर लिया था। दूसरा कारण बन गया रानी का पुत्र हैदरशाह। और तीसरा कारण उदयनदेव—उसे भी अब मंत्रिमंडल मे प्रवेश दे दिया गया था।

शाहमीर ने सहधर्मी होने के कारण भी जुलचू और अचल के आक्रमणो की निंदा की। उसने कश्मीरवासियों की निःस्वार्थ सेवा कर उनकी सद्भावना जीत ली। कोटारानी का पुत्र हैदर उसीकी शिक्षा-दीक्षा में था। उसने उसका भी मन माता की ओर मे फिराकर अपने वश मे कर लिया। बीच-बीच में वह हैदर को राजभवन में ले जाकर रानी के हृदय मे शूल चुभा आता। उसने मार्त्तंड को प्रतिद्वंद्वी बताकर हैदर के भीतर माता के प्रति विद्रोह जगा दिया।

शाहमीर ने कश्मीर के सपन्न नागरिको के साथ अपनी मित्रता बढ़ाकर अपने प्रभाव और प्रतिष्ठा की वृद्धि कर ली थी। उसने अच्छी धनराशि भी जोड ली थी। हिंदू-मुसलमान दोनो के बीच में उसकी प्रतिष्ठा हो जाने से कोटारानी घबरा उठी।

अब रानी हैदर को अपने ही सरक्षण में लेने को उतावली हो उठी, पर शाहमीर इसके लिए बिलकुल राजी न हुआ। उसका विचार हैदरशाह को कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं उसका सरक्षक-प्रतिनिधि बन जाना था। उसने रानी के दिये प्रधानमत्रित्व को ठोकर मार दी।

शाहमीर का सामना करने के लिए अब उदयनदेव धार्मिक पुस्तकों का अनुशीलन छोडकर प्रच्छन्न राजनीति मे भाग लेने लगा। अब मार्त्तंड के संरक्षक भिक्षाणदेव को मन्त्रिमडल मे शाहमीर के आसन पर बैठा दिया गया। इससे शाहमीर और भी भड़क उठा। वह निरंतर उदयनदेव का आसन पलट देने की धमकी देता और उसके लिए सक्रिय उपाय करता रहता। कोटारानी के साथ भी अब उदयनदेव के विचारो में साम्य न रहा।

इन दुरवस्थाओ के बीच में पडा उदयनदेव बीमार पड गया। भिक्षाणदेव भी कोटारानी को ही समर्थन देता रहा और अचानक एक दिन १३३९ ईसवी मे उदयनदेव का स्वर्गवास हो गया।

कही कोई विप्लव न फैल जाये, इस आशंका से कोटारानी ने कई दिनो तक राजा का मृत्यु को प्रजा में प्रचारित नहीं किया। अब वह लावण्यक सरदारों की सहायता पाकर बहुत खुलकर शाहमीर और हैदर

दोनों की उपेक्षा करने लगी। फिर एक बार वह राजसिंहासन पर निर्भय हो गयी।

भिक्षाणदेव उसका बड़ा चतुर मंत्री था। उसकी सूझ-बूझ ही निराली नहीं थी, साहस भी अप्रतिम और शक्ति भी अपौरुषेय थी। शाहमीर का अभाव उसने बड़े कौशल से ढक दिया, जो उससे बड़ी ईर्ष्या रखने लगा था।

जब शाहमीर की कुछ न चली तो उसने कूटनीति का सहारा लिया और भिक्षाणदेव उसके जाल में फंस गया। शाहमीर ने बीमारी का बहाना बनाया और कोटारानी के पास संदेश भेजा कि वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा है, अपने पुत्र को ले जाने का प्रबंध करे। रानी ने इसके लिए भिक्षाणदेव को भेजा। कुछ देर तक शाहमीर ने उसके साथ बातें कीं, फिर एक पत्र पढ़ने को दिया। जब वह पत्र पढ़ ही रहा था तो वह जल्दी से उठा और रजाई में छिपा खड्ग चलाकर उसने एक ही वार में भिक्षाणदेव को मार डाला।

कोटारानी इसपर बहुत रुष्ट हो गयी। उसी समय वह सेना लेकर उसका वध करने को जाने लगी, पर मंत्रियों ने उसे शांत कर दिया। शाहमीर के संरक्षण में उसका पुत्र था, कहीं उसके प्राण न संकट में पड़ जाएं, इसलिए वह चुप हो गयी और प्रतिहिंसा को भी कुछ समय के लिए स्थगित कर देना पड़ा।

फिर कौशलपूर्वक उसने हैदर को शाहमीर के संरक्षण से छुड़ा लिया। इससे वह और भी विरोधी हो गया। फिर उसके आतंक से बचने के लिए कोटारानी ने अपनी राजधानी अंदरकोट में बना ली।

अब शाहमीर और भी प्रबल हो उठा। कोटारानी जब एक मंदिर में हैदर की शुद्धि करने गयी थी, उसने चारों ओर से उसे घेर लिया और सबको बंदी बना लिया।

बहुत दिनों से कोटारानी पर उसकी आंख थी। अब उसने तीनों माता-पुत्रों को कारागार में डाल दिया। उनको साधारण भोजन और कठोर श्रम देना आरंभ किया कि वह उसके अनुचित प्रस्ताव को जल्दी से जल्दी मान ले।

यह अनुचित प्रस्ताव उसके साथ विवाह कर लेने का ही था। उसने

रानी से कहा, "मैं उदयनदेव की तरह तुम्हारे शयन-भवन में तुम्हारा बंदी होकर कुरान का पाठ करता रहूंगा। सिंहासन पर तुम्हीं रहोगी और तुम्हारे राज-काज में मैं कुछ भी दखल न दूंगा। हां, जब तुम्हारे शासन पर कोई संकट आ जाये तो उसमें मदद करूंगा और कोई बाहर का शत्रु चढ़ाई कर बैठा तो उसका सामना करने को तलवार लेकर समर-भूमि में कूद पड़ूंगा।"

लेकिन कोटारानी को उस अधेड़ उम्र के व्यक्ति की वासना स्वीकृत नहीं हुई। इसके फलस्वरूप उसने उन तीनों से और भी कठोर व्यवहार आरंभ किया।

कोटारानी तो उसके दिये हुए कष्टों को झेलती रही, पर उसके दोनों बेटे ऊब उठे। वे दोनों सुकुमार बड़े सुख में पले थे। एक दिन मार्त्तंड और हैदर ने माता से छिपाकर परस्पर मंत्रणा की। आधी रात का समय था। कोटारानी घोर निद्रा में थी। हैदर जाग रहा था। उसने टटोलकर धीरे से पुकारा, "मार्त्तंड!"

मार्त्तंड बोला, "कौन, हैदर?"

"हां, धीरे से बोलो कि माता की नींद न खुल जाये।"

"कहो, क्या कहना है?"

"मैं मुसलमान हूं और तुम हिंदू हो। लेकिन हम दोनों की मां एक ही है न?"

"हां, जरूर, ऐसा ही है।"

"चलो फिर उस कोने में जाकर हम एक मां के बेटे अपने मनों को भी एक कर लें।"

वे दोनों एक कोने में गये। हैदर बोला, "देखो, इसने सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने चाचा के घातक रिंचन से शादी की।"

मार्त्तंड उसे अप्रतिभ करते हुए बोला, "देश को बचाने के लिए किया।"

"झूठा बहाना।"

"अरे, क्यों तुम ऐसा कहते हो? वे तुम्हारे माता-पिता हैं।"

"हां, यह भी वैसी ही एक सच्चाई है। मुझे कह लेने दो। फिर क्या

उसी राजसिंहासन के लिए इसने मेरा परित्याग कर उदयनदेव से विवाह नहीं किया ?"

"अच्छा, अपने मतलब पर आओ। करना क्या है ?"

"हां, मतलब पर आने के लिए ही यह एक सीढ़ी है। और भी सुनो, हमारा क्या अपराध है ? क्या हमने कहीं चोरी की या डाका डाला है ? क्या इसी माता के कारण हम यहां कैद में कष्ट नहीं भुगत रहे हैं ? जमीन पर सोते हैं, अधूरे बिस्तर में, सीलन और अंधकार में, दिन-भर में जितनी चक्की पीस सकते हैं, वही मोटा अनाज हमें खाने को मिलता है।"

"इसे दुर्भाग्य की चोट क्यों नहीं समझ लेते ?"

"अरे बुद्धू, अगर तू जरा भी हिम्मत रखे तो अभी इस कारागार से छूट सकता है।"

"तो चल, हम मां से कहें कि फिर एक बार शादी कर ले।"

"अंत में यह करनेवाली भी यही है। तब हमारा इससे कोई रिश्ता न रहेगा। इसलिए मैं तुझे एक और सही-सीधी राह बताता हूं।"

"कहते-कहते फिर चुप क्यों हो गया ?"

"चलो, यह सो रही है। तेरा वश नहीं, हिम्मत नहीं, तो तू कसकर इसके दोनों हाथ पकड़ लेना, मैं इसका गला घोंटकर मार डालूंगा।"

मार्त्तंड जोर से चिल्लाया, "अरे मातृहंता ! तेरे मुख से यह क्या निकल गया ?"

कोटारानी ने जागकर सुन लिया। वह चिल्लाई, "कौन है ?"

"हैदर और मार्त्तंड !"

"माता की हत्या कर क्या सुख मिलेगा तुम्हें ?"

"फिर हमें मुक्त क्यों नहीं होने देतीं ? बंदीगृह की चाबी शाहमीर के गले में है और उसके कान तुम्हारी 'हां' के लिए खुले हैं।"

"अच्छी बात। अब सो जाओ। मैं भी नींद पूरी कर लूं।"

"अब तो सुबह निकट है।"

"तो हमारी इच्छाओं में प्रभु की इच्छा पूरी हो।"

हैदर ने बंदीगृह के चौकीदार को तभी पुकारा, "जाओ, अभी जाकर

शाह साहब से कहो, शादी के बाजे बजाए जायें।"

कैदखाने के द्वार खुलते कुछ भी देर नहीं लगी। दासियां कोटारानी को हाथोंहाथ उठाकर ले गयी। उसे नहलाया-धुलाया। उसने राजसी वस्त्र और अलंकार पहने। और अपने अंत.पुर में गयी।

उसके दोनों पुत्रों को भी राजकुमारों की वेश-भूषा पहनाई गयी। और वे बड़े कौतूहलपूर्वक सब कुछ देखते रहे।

विवाह के बाजे बज उठे। भारी ज्योनार का प्रबंध हुआ। हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए उनकी रुचि के अनुसार। उस दिन शायद ही किसीके घर चूल्हा जला हो।

बड़ी धूमधाम से उनके विवाह की रस्म पूरी हुई।

सुहागरात में बूढ़ा शाहमीर सज-धज के साथ अपने कक्ष में कोटारानी की प्रतीक्षा करने लगा। दासी कोटारानी को द्वार तक पहुंचाने आयी। उसे सुवासित गजरा देकर उसने कहा, "लीजिए, इस वरमाला को भी तो संभालिए।"

"हां, वह मेरा तक्षक भी दीवार पर से उतारकर मुझे दे।"

"यह क्यों?"

"मेरे शत्रु क्या कम हैं मेरे साथ।"

दासी अचंभे में पड़ गयी। कोटारानी ने अपने ही हाथ से दीवार पर से कटार उतार ली और शाहमीर के कक्ष में प्रविष्ट हुई।

बड़ी विजय के उल्लास में शाहमीर उससे मिलने को आगे बढ़ा ही था कि कोटारानी कटार के प्रहार से अपनी अदमनीय और जन्मजात कामना का अंत कर धरती में मिल गयी।

इस प्रकार कश्मीर के इतिहास की एक रोमांचकारिणी नारी का अंत हो गया। वह एक जन्मजात कूट नारी थी, साथ ही वीर रमणी भी थी। प्रजा-वत्सलता उसका स्वभाव था या उसकी लालसाओं का आवरण, कहना कठिन है। राज्य में अनेक असुविधाओं के बावजूद उसने बड़ी चतुराई से राज्य किया। वह सहदेव को मृग-मरीचिका, रिंचन की प्रेरणा और उदयनदेव की ज्योति थी। कौन कहेगा कि उसने देश को बचाने के लिए ही अपने रूप-यौवन और प्रेम की होली खेली थी!

अंत में किस प्रकार उसने अपने ही हाथों, स्वयं को शत्रु समझ, अपने संघर्षमय जीवन का अंत कर दिया।

क्या उसे कश्मीर की क्लियोपेट्रा का नाम नहीं दिया जा सकता ? क्लियोपेट्रा ने सर्पदंश से आत्महत्या की, इसने तक्षक से, इसलिए यह नामकरण पूरी तरह सार्थक लगता है, आपका क्या विचार है ?

०००



